वर्ष ७, अंक ६

श्रीकृष्णाय नमः

ज्येष्ठ पूर्णिमा १९८६

वार्षिक चन्दा ३)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं० लेख लेखक

१. देवोपदेश ... ... पृष्ठ
२. परमात्मा का गुण गान करने से दान का फल मिलता है [ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी ... २२२
३. उत्कण्ठा (कविता) [ले० श्री हनुमानप्रसाद शर्मा 'कवि सैनिक' २५८
४. श्रीकृष्ण और गोपियाँ [ले० श्री यमुनाप्रसाद जी श्रीवास्तव] २५६
५. आत्मज्ञान और आनन्द [ले० श्री मोहनलाल जी गोयिन्दका २६०
६. महात्मा दधिच [ले० श्री मदनगोपाल जी 'सिंहल] २६४
७. भावुक-भिखारी [ले० श्री प्रेम-पथ-पथिक] २६७
८. अभिलाषा (कविता) [ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम] २६६
९. भगवद्भक्ति (ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी २७१
१०. महात्मा कबीर दास जी [ले० श्री नर्मदा प्रसाद खरे] २७१
११. योग-साधन [ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती] २७७
१२. भजन २८३
२८८

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें ।

१.	भवगद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।)
३.	वेदोपनिषद्		।)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	।)
५.	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	।।।)
६	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=।।)
७.	सत्य शब्द संग्रह गुटका)	,,	।)
८.	सत्य शब्द संग्रह	,,	।=)
९.	शब्दसंग्रह	,,	।)
१०.	सारसंग्रह	,,	।)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१२.	मनुस्मृति सार	,,	=)
१३.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=)
१४.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१५.	भगवदंक	,,	॥।)
१६.	गवांक	,,	१)
१७.	महात्मांक	,,	१)

नोटः-एक रुपए से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजना चाहिये ।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।

मुद्रक तथा प्रकाशक ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।

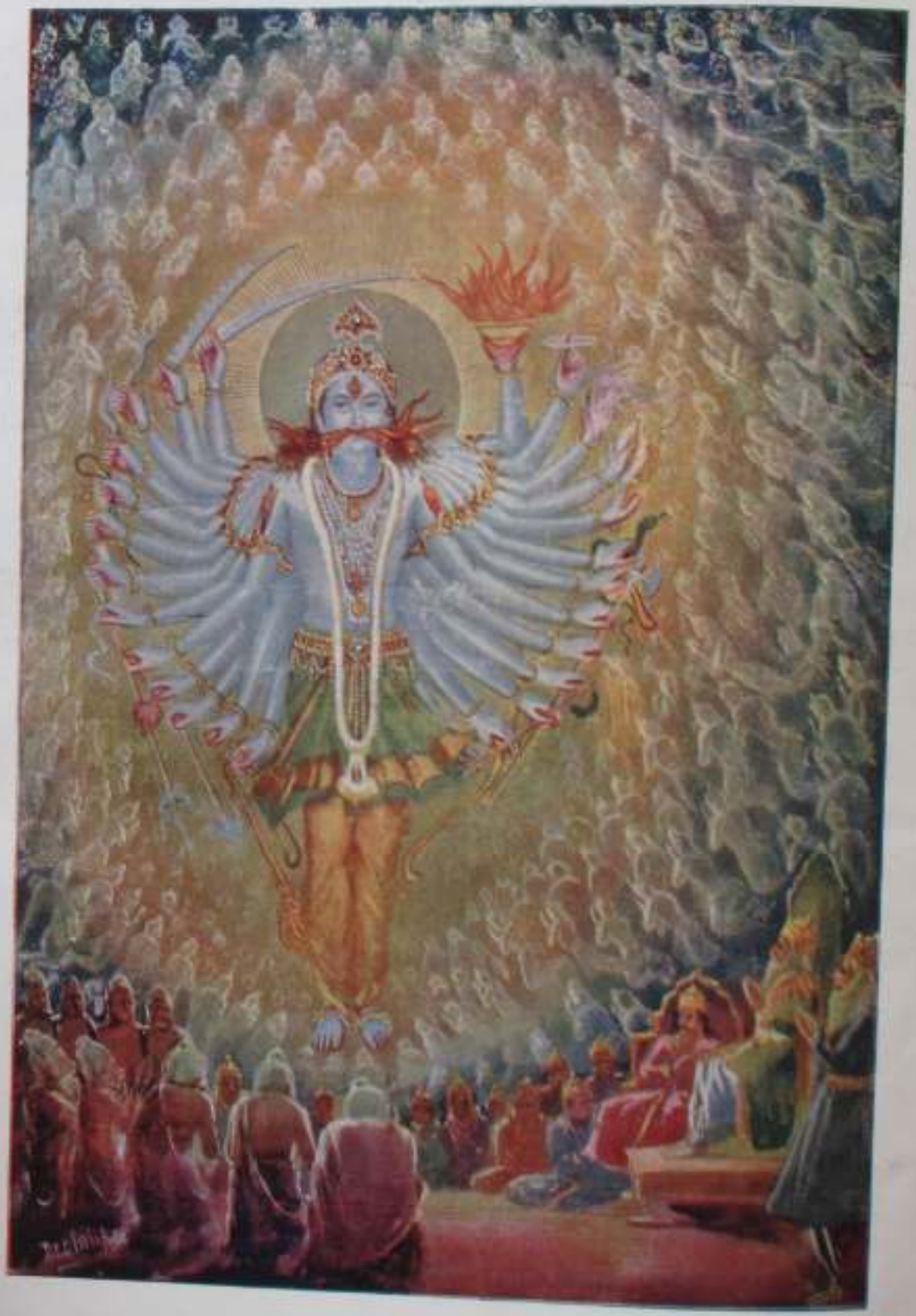

कौरव-सभामें विराट् रूप

GITA PRESS, GORAKHPUR.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ७ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, ज्यष्ठ पूर्णिमा, मार्च १९३३ | अंक ६ पूर्ण संख्या ८१

वेदोपदेश

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृता ॥ ५ ॥

धन-रक्षक और स्तोत्र-पात्र इन्द्र! तुम्हारा ऐसा स्तोत्र तुम्हारा प्रतिभा-प्रिय और सत्य हो।

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो। समन्येषु ब्रवावहै ६ ॥

शतक्रतु! इस समर में हमारी रक्षा के लिये उत्सुक बनो। दूसरे कार्य के सम्बन्ध में हम दोनों मिल कर विचार करेंगे ॥ ६ ॥

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥

विभिन्न कर्मों के प्रारम्भ में, विविध युद्धों में, हम अत्यन्त बली इन्द्र को, रक्षा के लिये, सखा की तरह बुलाते हैं ॥ ७ ॥

तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत। सखे वसो जरितृभ्यः ॥ १० ॥

इन्द्र ! तुम्हें सब चाहते हैं, तुम्हें असंख्य लोग बुला चुके हैं। तुम सखा और निवास के कारण हो। मैं प्रार्थना करता हूं कि, तुम अपने स्तोताओं पर अनुग्रह करो ॥ १० ॥

तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु। यथा न उत्समसीष्टये ॥१२॥

सोमपायी सखा और वज्रधर इन्द्र ! तुम ऐसे बनो, तुम इस तरह आचरण करो, जिससे हम मंगलार्थ तुम्हारी अभिलाषा करें ॥ १२ ॥

[ऋ० मं० १, सू० ३०, मं० ५, ६, ७, १०, १२]

परमात्मा का गुण गान करने से दान का फल मिलता है।

(ले० श्री स्वामी आत्मानंद जी)

दान क्या है ? हम समझते हैं कि एकादशी, अमावस्या, संक्रांति या ग्रहण के समय तथा आसन्न मृत्यु के समय या मरने के बाद जो कुछ हम देते हैं उसी का नाम दान है। साधुओं को आटा दाल चावल आदि देना, भिखारियों को भिक्षा या झूठन देना, किसी कंगाल को फटा हुआ कपड़ा या पुस्तक देना या किसी को दक्षिणा देना या तीर्थों में ब्राह्मणादि भोजन कराने का नाम दान है। किसी प्यासे को पानी, भूखे को भोजन देना, किसी भूले हुए को रास्ता बताना, बीमार को दवा देना या बताना, दुखी को दिलासा देना, सगे सम्बन्धी को काम काज के समय सहायता देना या सांसारिक व्यवहार में प्रतिदिन अथवा जब कभी बन सके सब लोगों के साथ यथा शक्ति रियायत करके उदारता से वर्तना भी दान है। बहुत से लोगों को यह दान साधारण मालूम होता है, किन्तु क्या तुम जानते हो ऐसे छोटे छोटे दानों का क्या मूल्य है ? महात्मा लोग कहते हैं कि जिसके यहां सर्वदा छोटे बड़े दान का प्रवाह बहा करता है वही भाग्य शाली है।

क्या तुम जानते हो कि दान क्या है ? सन्त जन कहते हैं कि दान जीवन सुधारने की दवा है, संकुचित पड़ी हुई हृदय की वृत्तियों को फैलाने की दवा, जगत् में ईश्वरीय स्नेह फैलाने की कल, मनुष्य के स्वार्थ को हृदय में दबा रखने की लगाम, मनुष्य को ऊंचे चढ़ाने की सीढ़ी, ईश्वर के मार्ग में आगे बढ़ना सिखाने की पाठशाला, ईश्वरीय कृपा खींचने का यन्त्र, जगत् के सब जीवों में ईश्वर का चैतन्य दिखाने की दूर्बीन, स्वर्ग का द्वार खोलने की कुञ्जी तथा आत्मा को परमात्मा की ओर ले जाने का आकर्षक यन्त्र है। दान से यह सब हो सकता है। इससे हमारे उत्तम धर्म शास्त्रों में स्थान२ पर दान देने की आज्ञा है। किन्तु याद रखो कि यह सब अनन्त ब्रह्मांड के नाथ की कृपा से मिला उन्हें रिझाने के लिये ही होता है।

परन्तु यह भी याद रखो ईश्वर तो तभी प्रसन्न होता है जब कि मनुष्य अपना आत्मा का स्वरूप पहिचान कर ईश्वर की महिमा समझ कर उसकी ओर आकृष्ट होता है। इसके अतिरिक्त

मान या नाम प्राप्त करने के लिये बड़ाई के लिये देखा देखी, लोक लज्जा से, परम्परागत रिवाज के लिये, किसी स्वार्थांश तथा ऐसे ही दूसरे कामों के लिये जो दान दिया जाता है उससे कुछ भी लाभ नहीं होता, तो भी धीरे लाभ होने का मार्ग यह दान ही है। इससे दान देना मनुष्य का जीवन में प्रथम कर्तव्य है।

भाइयो! ऐसे श्रेष्ठ दान देने का कारण क्या है? कारण ईश्वर का स्वरूप पहचानना और उसके पास पहुंचना है। दान देने का फल क्या है? यही है कि ईश्वरमय होकर ईश्वर के पास पहुंच कर उस का गुण गान करना। यही श्रीभगवान ने गीता में कहा है "यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि" इस प्रकार विचार करने से ऐसा मालूम होता है कि ईश्वर की ओर आकृष्ट होकर ईश्वर का स्वरूप पहिचानना सीखना ही दान देने का मूल हेतु है और ईश्वरमय होकर उसका गुण गाया करना ही दान देने का फल है।

शास्त्र में कहा है कि स्नेह के सागर, दया के भंडार, निराधार के आधार, आनन्द के अवतार, मोक्षदाता महान् ईश्वर का जो गुण गाते हैं, उन्हें दान देने का फल मिलता है वही फल ईश्वर का गुण गान करने से भी मिलता है। दान देने में बहुत प्रकार की बारीकियां हैं, बहुत सी अड़चनें हैं हैं और बहुत से मनुष्य बेचारे ऐसे बुरे संयोग में पड़े होते हैं कि वे दान नहीं दे सकते, किन्तु सर्व शक्तिमान् पवित्र परमात्मा के गुणगान को सब लोग सरलता पूर्वक कर सकते हैं इससे यह दान से भी बढ़कर है।

इससे प्रिय पाठको ईश्वर! की महिमा समझ कर ईश्वर मय होकर हृदय से परमेश्वर का गुण गान करो, ईश्वर परायण होकर ईश्वर का गुणगान करो!! सर्व कर्मों को ईश्वरार्पण करके ईश्वर का गुणगान करो!!!

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्॥

चौ०—ममगुन गावत पुलक शरीरा।
गद गद कंठ नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाके।
तात निरंतर बश मैं ताके॥

जगमें दो तारन को नौका।
एक तो ध्यान गुरू का कीजे दूजे नाम धनी का॥
कोटि भांति कर निश्चय कीयो संशय रहा न कोई।
शास्त्र वेद पुराण टटोले जिनमें निकसा येाई॥
इन्हीं के पीछे सब आवो योग यज्ञ तपदाना।
नौविधि नौधा नेम प्रेम सब भक्ति भाव अरु ज्ञाना॥
और सबै मत ऐसे मानो अन्न बिना भुस जैसे।
बहुत कूटन बहुतै कूटा भूख गई नहिं तैसे॥
धोखा धर्म वही पहिचानो तामें ये दो नाहीं।
चरणदास शुकदेव कहत हैं समझ देख मन माहीं॥

उत्कण्ठा

[ले० श्री हनुमानप्रसाद शर्मा 'कवि सैनिक']

घनघोर घटा घुमड़ी नभमें, चहगास, थिरात न भू परसे।
हरसे बन चातक कोकिल मोर, सुहावन ओर छटा दरसे॥
छलघोर छलान की छमनमें नहि 'सैनिक' पांव परे घरसे।
किहि भांति मिलौ सजनी ब्रजचन्दहि देखनको जियरा तरसे॥

श्रीकृष्ण और गोपियां

[ले० श्री यमुनाप्रसाद जी श्रीवास्तव]

गोपियां शृंगार निष्ठा की भगतनीं थीं। वे सदा बन ठन कर रहती थीं। उनके रूप लावण्य तथा वस्त्रालङ्कारादिका वर्णन करते हुये कवि ने कहा है:-

हाथन चूरी चारु बिराजैं।
　　कनक मुंदरियन अति छवि छाजैं॥
सहज शृंगार उजोत उठो है।
　　अंग अंग सुठि सुन्दर सोहैं॥

गोपियां श्रीकृष्ण जी की अलौकिक छवि पर मोहित थीं। वे उनके चहुं ओर मंडलाती और नाना प्रकार की अठखेलियां किया करती थीं।

कबहुं वे अंखियां मटकावें।
　　आप हंसे अरु उन्हें हंसावें॥
कबहुं आपन बदन सकोरें।
　　कबहुं दृग अरु भौंह मरोरें॥
नाना भांतिन भाव बतावें।
　　निज मन की अभिलाष जनावें॥
देखत जहाँ कृष्ण पछिाहीं।
　　तहां मिलावत निज तन छाहीं॥
दरश लालसा दृगन न थोरी।
　　देखोई चहैं बहोर बहोरी॥

श्रीकृष्ण जी को रिझाना और उनका मनोरञ्जन करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था।

'कृष्ण सुखे हेतु करे सब व्यवहार।'

गोपियां रात दिन उन्हीं का ध्यान करती और उन्हीं के प्रेम में मग्न रहती थीं:-

धरें ध्यान उर कुंज बिहारी।
　　हरि मूरत उर टरै न टारी॥
बैठत उठत चलत घर बाहर।
　　श्याम स्नेह गुप्त अरु जाहर॥
सोवत जागत दिन अरु राती।
　　प्रीतम कृष्ण प्रीति रस माती॥
सब अंग कृष्ण प्रेम रस पागी।
　　भईं कृष्णमय सकल सुभागी॥

वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती थीं और ब्रह्मचारिणी थीं। श्रीकृष्ण जी के प्रति उनका प्रेम निष्काम, निर्दोष और पवित्र था।

गोपियां गोरस बेचने यमुना उस पार जाना चाहती थी परन्तु यमुना जी बाढ़ पर थीं। श्रीकृष्ण जी को तट पर देख, उन्होंने बड़ी उत्कण्ठा से कहा:-

व्रजमोहन! उस पार जाना है। नाव भी नहीं है। क्या करें?

श्रीकृष्ण जी ने हंसकर कहा "गोपाङ्गनाओ नाव तो किनारे बन्धी है परन्तु मांझी नहीं है। कहो तो मैं ही तुम सब को बैठा कर उस पार पहुंचा आऊं।"

गोपियों ने प्रसन्नता से कहा 'व्रजराज! अच्छी बात है। चलो! तुम्हीं पहुंचा आओ।"

श्रीकृष्ण जी ने नाव खोली, गोपियों को बैठाया और स्वयं बैठ कर नाव खेने लगे। "नाव जीर्ण थी। उसमें पानी भर आया और बीच धार में पहुंचते ही वह डूबने लगी। श्रीकृष्ण जी ने गोपियों का ध्यान उस ओर आकर्षित कर कहा "गोपाङ्गनाओ! लो, नाव डूबने लगी। संभल जाओ। और अपने अपने इष्ट को, सब सुमरन करो। प्राणों को संकट में देख, गोपियां श्रीकृष्ण से लिपट गईं। किसी ने श्रीकृष्ण जी हाथ, किसी ने पांव, किसने कमर, पकड़ली, किसी ने चीर पकड़ लिया, कोई गले से लटक गई और कोई छाती से चिपट

गई। फिर सबों ने साहस बटोर, और श्रीकृष्ण जी की दृष्टि से अपनी मोहनी दृष्टि मिलाकर कहा वृजनाथ! नाव डूबती है तो डूबने दीजिये। इसकी हमें चिन्ता नहीं है। हमारी विनती तो यह है।

'विनती इतनी सुनिये हमरी!
हम आप बन्धो तुम छोरिहो न।
करुणा करके करुणा करन,
निज रंग चढ़ाय के बोरियो न॥'

यमुना जी के उस पार श्रीकृष्ण जी के सखा थे। उन्होंने भी यह दृश्य देखा और आश्चर्य करके कहा गोपी वल्लभ! क्या आज इन गोपकाओं का अन्त ही कर दोगे?

श्रीकृष्ण जी ने इसका उत्तर न देकर, बाँस की बल्ली को हाथ लगाया। नाव हवा से बातें करने लगी और सरांती हुई किनारे पर आ लगी। हंसते खेलते गोपियों ने यमुना जी पार कर, और प्रेम में विह्वल होकर श्रीकृष्ण जी की स्तुति की।

जय गोपाल जगत चिन्तामणी।
सकल लोक कारण करणम्॥
अगम अपार पार नहिं महिमा।
पाखण्ड भव भय हरणम्॥
सर्व भूत सर्वज्ञ शिरोमणि।
नारायण सुन्दर वरणम्॥
मोहन मधुर मनोहर मूरति।
कृष्ण कृपानिधि तुम शरणम्॥'

प्रियपाठको सावधान! हमारी नाव भी मंझधार में है–

झिझरी नैया, नाव पुरानी, डूब रही मझधार।
शीघ्र लिपट भगवान से, करिये बेड़ा पार॥

[२]

यशोदा जी श्रीकृष्ण जी को पकड़ कर बाँधना चाहती थीं। परन्तु वे पकड़ाई में नहीं आते थे। फुदक कर इस ओर से उस ओर हो जाते थे। अन्त में जब यशोदा जी बहुत थक गई, और उनके पुरुषार्थ का अभिमान शान्त हो गया तब श्रीकृष्ण जी स्वयं उनके पास आ पहुंचे। यशोदा जी ने उन्हें पकड़ लिया और भृकुटि मरोड़ कर कहा:–

बांधि तोहि हरिहों अबै, सबै चारुरी तोर।'

अनन्तर रस्सी लेकर उन्हें बांधने लगी परन्तु वे बन्धन में नहीं आते थे।

सब रजु है आंगुरी घटि जाई।
गर्भ जानि नहि दाम समाई॥
पुनि पुनि यशुमति और मंगावें।
हरि के तनु सब छोटो आवें॥

इस प्रकार बांधते २ जब यशोदा जी थक गई और उनके बल का अभिमान शान्त हो गया तब रस्सी अपने आप पूरी हो गई और श्रीकृष्ण जी बन्ध गये।

'भक्त-वत्सल प्रभु भक्त हित। आप बन्धायो राम॥'

श्रीकृष्ण जी की यह दशा देख कर, गोपियां हंस पड़ीं और कहने लगीं। व्रजनन्दन! यशोदा जी ने अच्छा किया जो तुमको बांध दिया। तुमने हमको भी तो माया जाल में बान्ध रक्खा है। अब तुमको मालूम हो जावेगी कि माया जाल में बन्धे रहने से हमको कितना कष्ट हो रहा है।

बात सच्ची थी। श्रीकृष्ण जी ने स्वयं श्रीमुख से कहा है:–

'मैं पूरण गति अविनाशी। बाँधे सब माया की फांसी॥'

श्रीकृष्ण जी से कुछ कहते न बना। वे अपना सा मुंह लेकर रह गये।

साधनाएँ–अर्थात् कर्म धर्म जप तप पूजा पाठ इत्यादि वृथा हैं। उनके द्वारा भगवान की प्राप्ति असंभव ही नहीं वरन कण्टक-रूप है। भगवान ने स्वयं कहा है:–

'भक्त हेतु जन्मत जग माहीं।
कर्म धर्म के मैं वश नाहीं॥
योग यज्ञ मन में नहिं लाऊं।
दीन गुहार सुनत उठि धाऊं॥
प्रेमाधीन रहों सब पासा।
और नहीं कछु मोको आसा।
ब्रह्मा कीट आदि के मांही।
व्यापक हों समान सब ठाहीं॥'

तुलसीदास जी ने कहा है:-

'मिलहिं न रघुवर बिन अनुरागा।
कोटे प्रकार किये जप यागा॥

और श्री वृषभानु दुलारी ने यह कहा है-

'श्याम सदा वश प्रीति के, तीन भुवन विख्यात।
बिना प्रीति नहि पाइये, नन्द महर को तात॥
इनकी प्रीति प्रीति के मांही।
बिना प्रीति ये जानत नाहीं।
जब लग इनसों प्रीति न माने।
तब लग इनकी प्रीति न जाने॥
इनकी प्रीति लह्यो जो चाहो।
तो करि इनसों प्रीति निबाहो॥

परन्तु जब तक इनकी प्रीति साधनाओं अर्थात् कर्म धर्म जप तप आदि के अभिमान के कारण मलीन रहती है तब तक भगवान् नहीं मिलते। अभिमान के दूर होते ही मालिनता हट जाती है, और प्रीति निर्मल हो जाती है।

'प्रेम अभूषण कनक सम, मलिन गर्व तें होय।
बिन त्यागे अभिमान के, निर्मल होय न सोय॥'

उस समय भगवत् कृपा होती है और भगवान् स्वयं आ मिलते हैं।

'उन्हें वह जान सकता है, कृपा जिस पर उन्हीं की हो।'

अर्थात्

'सो जाने जिहि देहु जनाई।'

[३]

ऊधो वैराग्य की शिक्षा देने आये थे। यमुना तट पर उनका और गोपियों का सम्वाद हो रहा था। इस अवसर पर

'आय गये तहं सुनन को, भ्रमर रूप गोपाल।
ऊधौ गोपिन की कथा, अति रस प्रेम रसाल॥'

भ्रमर को देखते ही गोपियों ने कहा:-

'मधुकर! मधु माधव की बानी।
हम सब जिमि माखी लपटानी॥
उड़ि नहिं सकें फंसी हैं तामें।
आवत शोच कहें अब कामें॥
पाछे अब करनी यह कीनी,
योग छुरी सब के गर दीनी॥'

यह सुन एक गोपी ने कहा-यह भी तो उन्हीं का संगी है और उन्हीं के रंग में रंगा है। इसमें और श्रीकृष्ण जी में अन्तर ही कितना है!

वे मुरलीधर जग मन मोहन।
इनकी गुञ्जन सुमन दृग मोहन॥
वे निशि अनत प्रात कहुं आवें।
ये बसि कमल अनत रुचि मानें॥
वे हैं चरण सुभग भुज चारी।
ये षट् पद दोउ विपिन विहारी॥
वे पट् पीत मञ्जु तन काछे।
इनके पीत पंख दोउ आछे॥
वे माधव ये मधुप कहावत।
काहू भांति भेद नहि आवत॥
वे ठाकुर ये सेवक उनके।
दोऊ मिले एक ही गुन के॥
कहा प्रतीत कीजिये इनकी।
पर्यो प्रकृति ऐसी है जिनकी॥

निरस जानि भाजत पल मांही।
दया धर्म इनके कछु नाहीं॥
मन दे सरवस प्रथम चुरावें।
बहुरों ताके काम न आवें॥
इनकी प्रीति किये यों माई।
ज्यों भुस पर की भीति उठाई॥'

दूसरी ने यह कहा:-

सखी री! श्याम कहा हित जाने।
सूरदास सरवस जो दीजो कारो कृतहि न माने॥

और तीसरी ने यह कहा:-

'सखीरी श्याम सबै इकसार।
मीठे वचन सोहाये बोलत अन्तर जारन हार।
भ्रमर, कुरंग काग अरु कोयल कपटन की चटसार॥

इसके पश्चात गोपियों ने यमुना जी की ओर देख कर कहा:-

मैया! इस निर्दयी ने पहिले तो हमको अपने माया जाल में फंसा लिया और अब कहता है योग करो। भला! कहीं ऐसा हो सकता है?

'रंगे श्याम रंग जे पहिले से।
बदन और रंग तिन पर कैसे॥
बसे जासु उर सगुण कन्हाई।
कैसे निर्गुण तहां समाई॥
यह मन श्यामहि रूप लुभानो।
कहा करे है योग विरानो॥

मैया! यह बड़ा नटखट कपटी और छली है। तू इसे अपनी परम पावनी भँवर में डुबादे। परन्तु यह तुझसे कैसे हो सकेगा? तू भी तो उसी के रंग में रंगी है। अच्छा! यदि यह नहीं हो सकता तो फिर हम ही को डुबादे। भला! यमुना जी इसका क्या उत्तर देतीं? और वे बोलती भी तो कैसे बोलती? यमुना जी से निराश होकर, गोपियों ने आकाश की ओर देखा और कहा:-

ओ काले बादरे! तू भी तो श्याम के रंग में रंगा है। और हमारी पुतलियों में भी वही बसा है।

'कजरारी अखियन में बसो रहे दिन रात।'

भगवन! हम कहां जांय और क्या करें?

जित देखौं तित श्याम मई है

श्याम कुंज बन यमुना श्यामा, श्याम गगन घन घटा छई है।
सब रंगन में श्याम भरो है, लोग कहत यह बात नई है।
हौं बौरी कै लोगन ही की, श्याम पुतरिया बदल गई है
चन्द्रसार रविसार श्याम है, मृग मदसार काम विजई है।
नीलकंठ को कण्ठ श्याम है, मनहुं श्यामता बेल बई है।
श्रुति को अक्षर श्याम देखियत दीप शिखा पर श्यामतई है।
नर देवन की कौन कथा है, अलख ब्रह्म छवि श्याम मई है॥

इस से किसी प्रकार छुटकारा नहीं है।

भये श्याममय नयन हमारे, नहीं श्याम हमतें कहुं न्यारे।

अनन्तर गोपियों ने अपनी विरह-वेदना रोक कर कहा।

"उद्धव! कारे सबहि बुरे"

गोपियों ने इस प्रकार संकेतों ही संकेतों में श्री कृष्णजी के संदेशे का उत्तर दिया, और श्रीकृष्ण जी के चरणों में ध्यान लगा कर,

हरे कृष्ण! हे कृष्ण पियारे, वेगि लेहु सुधि नन्द दुलारे।

कहती हुई श्रीकृष्ण जी के रंग में सरा बोर हो गई।

प्रेम मगन तनकी सुधि भूली, गद गद कंठ रोमावली फूली।

ऊधो ने भी जान लिया कि यहां वैराग्य की दाल गलने की नहीं है। बेचारे उलटे पाँव मथुरा जी लौट आये, गोपियों का सन्देशा श्रीकृष्ण जी को सुनाया और कहा:-

प्रेम विवश हो आपही, भक्तन छोरत फाद।
वदत वेद वाणी विदित, भक्त-वत्सल नंदनन्द॥

यह शृंगार निष्ठा की व्याख्या है। इस का सम्बन्ध स्त्रियों से है। गोपियां इस निष्ठा में पूरी उतरी हैं।

व्रज-गोपाङ्गनाओ! धन्य है तुमको, तुम्हारी भक्ति को, और तुम्हारे प्रेम को।

धन्य! धन्य! व्रजगोपिका, धन्य! कृष्ण सुखदान।
धन्य! यशोदा मातु को, जिन बांधे भगवान्॥
धन्य! धन्य! वृन्दावनहिं, धन्य! व्रजवासी बाल।
धन्य! राधिका जासु संग, विहरे मदन गोपाल॥

भगवान् हमको भी अपनी भक्ति दीजिये, जिस से हम आप का भजन कर अपना जीवन सफल करें।

बोलो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द मुरलीमनोहर की जय! जय!! जय!!!

आत्मज्ञान और आनन्द

[ले० श्री मोहनलाल जी गोयिन्दका]

आनन्द ही ब्रह्म है, सारा जीव जगत आनन्द से उत्पन्न हुआ है, आनन्द में जीवित है एवं इस आनन्द ही में इस का लय होता है। हम सृष्टितत्व के मूल सत्य को पूर्णता से अनुभव नहीं कर पाते, पर यह भली भांति समझते हैं कि संसार के सारे प्राणी आनन्द चाहते हैं। आनन्द के बिना कोई नहीं रह सकता, आनन्द-हीन जीवन समभूमि के समान है। आनन्द रहित कर्मशक्ति पंगु हो जाती है हृदय अवसन्न हो पड़ता है। इस लिये सारी चेष्टाओंके अन्तराल में मन का लक्ष्य आनन्द की ही ओर रहता है।

चोरी में, झूठमें, अहंकार से उन्मत्त होने में, लड़ने-झगड़ने में, दूसरों को दुःख पहुंचाने आदि सारे बुरे कामों में आनन्द की आशा रहती है, एवं दान, ध्यान, परोपकार, यज्ञ, तपस्यादि के मूल में भी आनन्द का ही प्रलोभन है, आनन्द की आशा के बिना स्वेच्छा से कोई भी कष्ट उठाना नहीं चाहता सभी कामों के पीछे भविष्य सुख की सुन्दर कल्पना रहा रहती है। बुरे कामों में तामसिक आनन्द की एवं सेवा तपस्यादि में सात्विक आनन्द की झलक दिखलाई पड़ती है।

परन्तु इन दोनों प्रकार के आनन्द के भेदको अनुभव करने का ज्ञान न रहने से, हम आनन्द के उद्गम स्थान का पता नहीं पासकते। इसलिये गीता कार ने सुखके तीन भाग किये हैं, सात्विक, राजस तामस,। सात्विक सुखको प्राप्त करने के लिये पहले त्याग, धैर्य संयमादि के अभ्यास द्वारा कुछ कष्ट उठाना पड़ता है, पर परिणाम मधुर होता है। राजसिक सुख प्रथम आनन्द दायक है, पर भविष्य में अशुभ-फल दाता है। निद्रा आलस्य आदि मोह जनक अज्ञान पूर्वक सुख तामसिक है।

साधारणतः सुख और आनन्द को एक ही अर्थ में व्यवहार करते हैं, पर वास्तव में सुख और आनन्द में बहुत भेद है। सुख इन्द्रियों के साथ विषय के संयोग से उत्पन्न दुःखका विपरीत अर्थ बाधक, ससीम, अनित्य और क्षण स्थाई है। पर आनन्द ब्रह्मास्वाद-संजात सुख दुःखातीत नित्य शाश्वत और अव्यय है। सुख का स्थायित्व मनुष्य की मनोवृत्ति पर निर्भर है, आज जो सुख है वही काल दुःख का कारण हो सकता है, एक के लिये जो वस्तु सुख दायक है सम्भव है वही दूसरे के लिये दुःख जनक है। पर आनन्द व्यक्ति विशेष की अवस्था पर निर्भर नहीं रहता, आनन्द सर्वदा आनन्द ही है। सुख बाहरी कारणों से उत्पन्न होता

है और आनन्द आभ्यन्तरिक-स्वतः उत्पन्न वस्तु है।

तामसिक या राजसिक सुख केवल अनित्य और क्षणस्थायी नहीं है। यह कभी कभी चरम दुःख की ओर भी ढकेल देता है। आनन्द पथ पर आनन्द घन के समीप से हटा देता है। पर आत्मिक सुख अनित्य होते हुए भी भविष्य में दुःख जनक नहीं होता, क्रमशः आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर आनन्दमय प्रभु की ओर अग्रसर होने में सहायता करता है। निष्काम सेवा, निर्मल प्रेम, ईश्वर आराधना, सत्संग, धर्मचर्चा, आदि से उत्पन्न सात्विक सुख आनन्द की ही प्रतिमूर्ति है इस से परम आनन्द का साधारण अनुभव किया जा सकता है। यह सात्विक सुख विशुद्ध और व्यापक होने पर ही आनन्द के रूपमें बदल जाता है। माता की पुत्र-प्रेम यदि समग्र विश्व व्यापी हो जाय तो वह सुख आनन्द का ही दूसरा रूप है। ज्ञानी जन कहते हैं कि आनन्द का आदि उद्गम स्थान आनन्दमय कोष में ही स्थित है। मानसिक अवस्था और प्रयोजन विशेष की अनुकूल घटना ही मनोमय कोष में स्पन्दन उत्पन्न करती है और उसे ही हम सुख या आनन्द कहते हैं। पर जब मनुष्य अनुकूल प्रतिकूल को भूल कर द्वन्द्वातीत अवस्था में मनको बाहरी आडम्बरों से हटा लेता है और आनन्द घन प्रभुकी समीपता प्राप्त कर लेता है, तब असली आनन्द का अनुभव कर सकता है। वह सुख दुःखातीत एक अवर्णनीय अवस्था है। उसी को योग शास्त्र में शायद समाधि कहते हैं। इसको प्राप्त कर लेने पर मुक्ति में विलम्ब नहीं रहता।

स्वभावतः मनुष्य को जिस काम में आनन्द मिलता है, वह उसे बिना किये नहीं रह सकता। जिसको नशे में आनन्द मिल जाता है, उसके लिए नशा त्याग करना दुःसाध्य हो पड़ता है। देश की सेवा में जिसको आनन्द की झलक दिखाई पड़ जाती है किसी प्रकार का अत्याचार भी उसे देश सेवा के पवित्र उद्देश्य से नहीं हटा सकता। धूर्त, लम्पट, साधु और महापुरुष सभी अपनी अपनी बुद्धि के अनुकूल जिसको आनन्द का कारण समझते हैं, उसी की उपासना करते हैं। पर एक का आनन्द चरम दुःख की ओर खींच ले जाता है तो दूसरे का मूल आनन्दमय पुरुष से मिला देता है केवल यही भेद है। अज्ञानी का तामसिक या राजसिक आनन्द है और ज्ञानी का सात्विक आनन्द है। पर मनुष्य सात्विक आनन्द का आस्वाद पाने पर फिर तामसिक आनन्द की ओर नहीं जाता। उस धर्म विरुद्ध आनन्द को वह तुच्छ न समझकर घृणा से त्याग देता है।

वह अनन्त, अव्यय, शाश्वत आनन्द ही सब की काम्य वस्तु है, सब उसी आनन्द सागर में डूबे रहना चाहते हैं, पर इस का उद्गम स्थान कहां है और इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? इस का पता हमें नहीं है, इसलिये अगणित दुःखों में बाध्य होकर पड़े रहते हैं। निरवच्छिन्न आनन्द तो दूर रहा, पारिवारिक जीवन में सामयिक शान्ति भी बहुत कम मनुष्यों को मिलती है, असली सुख तो मिलता ही नहीं।

ऐसा क्यों होता है? इसलिये कि अज्ञान से मोहित होकर, हम अपने आपको भूल गये हैं। हम उस आनन्दमय की सन्तान हैं, इस सत्य को भुलाकर विपथ गामी होगये। अनित्य, नश्वर, तुच्छ और परिवर्तन शील वस्तुओं से प्रेम करने लगे, और उनको ही आनन्द का कारण समझ कर हजार परिश्रम से उनके संग्रह में लग गये। पर उन वस्तुओं पर हमारा कोई अधिकार नहीं। उन के अवश्यम्भावी वियोग से हम दुःख सागर में डूब

गये। आनन्द में पुरुष को न पहचान कर बाहरी जड़ जगत् में, आनन्द की खोज करने लगे और उस के फल स्वरूप दुःख की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं।

आनन्द स्वयं प्रकाश शील, अज्ञान के बादल हट जाने पर अपने आप मनुष्य को विभोर कर डालता है। अज्ञान रहते दुःख दूर नहीं किये जा सकते। ज्ञान के साथ आनन्द का पूर्ण सम्बन्ध है। अज्ञान के कारण ही ऐश्वर्य को सुख रूप समझ कर दम्भ और अभिमान में मनुष्य मस्त हो जाता है पर ज्ञान चक्षु खुलते ही उसे विषवत् छोड़ने की इच्छा उत्पन्न होती है - शिशु के लिये खिलौना बड़ी ही आमोद प्रद वस्तु हैं, पर ज्ञान होने के साथ ही साथ वह खिलौना उसे सन्तुष्ट नहीं रख सकता इस लिये उपनिषद् कार कहते हैं "नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्" थोड़े में तो अज्ञानी ही सन्तुष्ट होते हैं। ज्ञानी तो संपूर्ण सुखों के दाता उस परमपुरुष को ही चाहता है। क्षुद्र सुख उसे आनन्दित नहीं कर सकते। एक महत आनन्द की निश्चित आशा से ये जगत के सारे दुःख और विघ्न उसके लिये सहज हो जाते हैं।

जब चोर को यह स्पष्ट अनुभव होजायगा कि चोरी से प्राप्त धन सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक देता है तो वह उसी समय उस प्रवृत्ति को त्याग देगा। बस इसी प्रकार जब हम असंशयित हो स्पष्ट अनुभव करने लगेंगे कि जिस पथ पर हम चल रहे हैं वह असली सुखका मार्ग नहीं है, असली सुख की प्राप्ति के लिये तो दूसरा ही मार्ग खोजना पड़ेगा तो उसी समय हम अपनी गतानुगतिक जीवन प्रणाली को बदल डालेंगे। पर उसके पहले तो संसार की इन दुःख सुखों की लहरों से टकराना ही पड़ेगा।

अतः अभी से हमें आनन्द की ओर अग्रसर होना चाहिये दुःख से दुखी न हों इसके लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। ज्ञान की सहायता से जीवन को सरल आनन्दमय बनाना चाहिये। वर्तमान भविष्य में दुःख पद न हो जांय इसके लिये ध्यान रखना चाहिये। जिस आनन्द से संकीर्णता आती हो, ईश्वर विमुखता उत्पन्न होती हो, व्यक्तिगत स्वार्थ या परोपकार, त्याग, प्रेम-भक्ति और धर्म पालन द्वारा जो आनन्द प्राप्त हो, जिसके द्वारा हृदय प्रशस्त हो विश्व अपना होजाय हृदय उत्फुल्ल हो पर अहंकार न आवे, किसी को दलित, वञ्चित और पीड़ित न करे, आत्म विकाश के अनुकूल हो, ऐसे आनन्द की प्राप्ति में कर्म और इच्छा शक्ति को लगाना चाहिये। फल की कामना त्याग कर अनासक्त हो सारे कर्म करने चाहियें। ईश्वर में विश्वास रख कर सत्कर्मों का अनुशीलन करना चाहिये। समझ लेना चाहिये कि विधाता की सृष्टि में केवल आनन्द ही है। दुःख तो भूल है।

सारांश यह है कि अकपट और सत्यता से पूर्ण आनन्द प्राप्त हो वही करना चाहिये। जहाँ से आये हैं वहीं लौट जाने की आशा और कोशिश को त्यागने की जरुरत नहीं है। बस इतने से ही धीरे २ अग्रसर हो उस 'भूमा' में जाकर मिल जायेंगे। आत्मा आनन्दमय हो जायगी। दुःखों के बन्धन से मुक्ति मिल जायगी।

(एक बंगला लेख के आधार पर)

महात्मा दधीच

[ले० श्री मदनगोपाल जी 'सिंहल']

[१]

स्थान—क्षीर सागर

(भगवान विष्णु शेष शय्या पर लेटे हुये हैं, लक्ष्मीचरण दबा रहीं हैं। देव-गण प्रवेश करते हैं।

देव—गणजय जय त्रिलोकी नाथ की जय।

विष्णु—अहा! देवगण, कहिये क्या आज्ञा है।

इन्द्र—आज्ञा? भगवन आज्ञा कैसी! देव लोक में अशान्ति मची हुई है, नन्दन वन उजाड़ हो रहा है, चारों ओर दैत्यराज वृत्रासुर की विजय का डंका बज रहा है, देव लोक उसके पदों से दलित हो रहा है, भक्त व्याकुल हो उठे हैं और भक्त वत्सल अब भी अनजानों की भाँति पूछ रहें हैं क्या आज्ञा है?'

विष्णु—तो इसका क्या उपाय किया जाये!

कुबेर—क्या उपाय भी हमें ही बताना पड़ेगा दीनानाथ? आज कैसे प्रश्न कर रहे हो?

उठाओ चक्र वाला हाथ जिससे भक्त रक्षा हो।
करो वध आततायियों का जिससे उनको शिक्षा हो॥

विष्णु—तो क्या आप वृत्रासुर का मेरे हाथों से वध चाहते हैं।

वरुण—अवश्य दीना नाथ।

विष्णु—किन्तु यह असम्भव है।

इन्द्र—कारण?

विष्णु—कारण, वृत्रसुर मेरा भक्त है और भक्त पर यह चक्र अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता। देवराज, यह चक्र जगत की सारी शक्ति को तो एक क्षण में हटा देगा किन्तु मिटाना भक्त को चाहा अगर खुद को मिटा देगा॥

इन्द्र—तो हम फिर किस पर जायें, किसको अपनी पुकार सुनायें अशरणशरण—

हम निर्बल हैं तुम ही बल हो, हम निर्धन हैं तुमही धन हो।
हम किससे जाकर कहें व्यथा बस तुम्हीं हमारे जीवन हो॥

विष्णु—अधीर न हो देवगणो! दैत्यों को नष्ट करने की शक्ति केवल चक्र में ही नहीं है किन्तु इससे भी अधिक शक्ति शाली पदार्थ मेरे जगत् में है।

इन्द्र—वह क्या दीना नाथ!

विष्णु—महात्मा दधीच की अस्थियां

(देवगण आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखने लगते हैं)

क्यों? आश्चर्य क्यों होता है? तप के प्रभाव से महात्मा दधीच की अस्थियों में जो शक्ति आगई है जो मेरे इस चक्र में नहीं।

कुबेर—किन्तु भगवन्! क्या वह अस्थियां हमें वृत्रासुर के वध में किसी प्रकार की सहायता दे सकेंगी।

विष्णु—अवश्य? किन्तु यदि महर्षि उन्हें देना चाहेंगे। उन अस्थियों से बना वज्र वृत्रासुर का वध कर सकता है।

वरुण—(इन्द्र से) तो आइये देवराज, उन्हीं पर चलें, उन्हीं को अपनी पुकार सुनायें। संभव है उन्हें दया आजाये।

इन्द्र—(हाथ जोड़ कर) अच्छा त्रिलोकी नाथ, आज्ञा।

'भगवान अपना अभय कर उठाते हैं। समस्त देव चले जाते हैं।'

[२]

स्थान दधीच आश्रम

(महात्मा दधीच अपने आश्रम में ध्यान मग्न बैठे हैं । एक दम आश्रम में अलौकिक प्रकाश फैल जाता है ।)

दधीच—(नेत्र खोल कर) हैं, यह क्या ? यह कौन दिव्य मूर्तियां आश्रम की ओर चली आ रही हैं । मालूम होता है देवलोक की अनुपम विभूतियाँ आज मुझे कृतार्थ करने आरही हैं (देवगणों का प्रवेश) आइये, आइये भगवन् पधारिये (देवगण बैठते हैं) कहिये क्या आज्ञा है किस कारण सेवक पर कृपा की है ।

कुबेर—महात्मन् ! इन्द्रलोक के एक मात्र अधिश्वर देवराज इन्द्र आपसे एक भिक्षा मांगने आये हैं ।

दधीच—(आश्चर्य से) मुझसे, कुबेराधिपति एक भिखारी से भिक्षा माँगने आये हैं । आप मुझसे कैसी हँसी कर रहे हैं ।

इन्द्र—हंसी नहीं मुनिराज ! आज हम आपसे एक अलौकिक भिक्षा माँगने आये हैं ।

दधीच—अहोभाग्य, अहोभाग्य ! कहो न देवराज, मैं अपना सर्वस्व आपके चरणों पर निछावर करने को तय्यार हूं । किन्तु मेरे पास है ही क्या ? यह रक्त, मांस, अस्थि मय शरीर का ढांचा है, इससे अधिक मैं आपको क्या दे सकता हूं ।

कुबेर—किन्तु आप इस शरीर से भी बड़े महान उपकार कर सकते हैं ।

दधीच—इस अपावन शरीर से । हरे, हरे ऐसा कह कर मुझे लज्जित न करो । मेरा यह शरीर किसी परोपकार में लगे मेरे ऐसे भाग्य कहां ।

वरुण—नहीं मुनिराज ! तुम्हारा यह शरीर कोई छोटा मोटा कार्य नहीं किन्तु वृत्रासुर के पदों से दलित देवलोक और इधर देखो, दुख और लज्जा से मलिन मुख देवराज की भी रक्षा करने में समर्थ है ।

दधीच—किस प्रकार ।

इन्द्र—अपनी अस्थियों का दान कर ।

दधीच—यह कैसे ?

वरुण—महात्मन् आपको विदित होगा आज वृत्रासुर ने देवलोक में अशान्तिक साम्राज्य स्थापित कर रक्खा है । शेष-शायी भगवान् ने उसके वध का साधन आपकी अस्थियों से बने शस्त्र को बताया है इसीलिये हम आपकी सेवा में उपस्थित हुये हैं ।

दधीच—(स्वगत) धन्य हो हरे ! बड़ा उपकार किया । इस शरीर की क्षीण अस्थियां धूर में न मिल कर देवों के काम आई इससे अधिक और सौभाग्य क्या हो सकता है । (प्रकट) लीजिये, देवराज मैं अपने प्राण त्याग करता हूं आप अस्थियां निकाल लीजिये ।

इन्द्र—धन्य हो महर्षि आप धन्य हो ।

दधीच—इसमें धन्य होने की कौनसी बात है, देवराज ! संसार में लाखों प्राणी नित्य मरते हैं परन्तु परहित में मरने का सौभाग्य कितनों को प्राप्त होता है । यह मिट्टी का शरीर मिट्टी में मिल जायगा किन्तु यदि इससे परहित साधन न हो सका तो उसका होना न होना व्यर्थ ही है । अच्छा अब देर करने की आवश्यकता नहीं । शुभ कार्य में देर अच्छी नहीं होती ।

(प्रभु का ध्यान करते, दधीच ध्यानस्थ हो जाते हैं । ब्रह्मरन्ध्र भेद कर ब्रह्मतेज बाहर निकलता है । उसके प्रकाश में देवों का प्रकाश मन्दा हो जाता है । देवगण

प्रणाम करते हैं।)

देव गण--जय जय महात्मा दधीच की जय।

(विश्वकर्मा दधीच की अस्थियों का वज्र बनाते हैं 'धन्य' 'धन्य' का शब्द होता है। आकाश से पुष्प वृष्टी होती है।)

भावुक-भिखारी।

[ले० श्री प्रेम-पथ-पथिक]

[१]

बस फिर वही एक ही बात! मैंने उसी दिन तुम्हें मना कर दिया, समझा दिया, कि मेरे द्वार पर मत आया करो! क्या कहा? अवश्य आऊँगा। खबरदार! जबान सम्हाल कर बातें करो। क्या तुम्हें खबर नहीं कि तुम किससे बातें कर रहे हो। जी हां जानता हूं आप इस शहर के एक रईस हैं। आपको हजारों आदमी झुक कर सलाम बजाते हैं। आप जिधर से निकलते हैं वहीं हल्ला मच जाता है। मुझे खूब मालूम है आप के बहुत हाथी घोड़े हैं, अनेक दास दासियां हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं, हर समय जी हुजूरों का दरबार लगा रहता है। खुशामदी टट्टू दिन को रात और रात को दिन बताते और पानी में आग लगाया करते हैं। पर इससे क्या। मैं भी शाहनशाहों को खरी खोटी सुनाये बिना नहीं रहता। वे मेरा कर ही क्या सकते हैं। अधिक से अधिक जेलखाने के चहार दिवारी के अन्दर बन्द करवा सकते हैं। चलो अच्छा ही हुआ भीख माँगने की खटपट से बचा। अरे चार दिन के अहंकारी! अपनी आंखों से हरे चश्मे खोल और दुनियां को उसी के रंग में देख! ऐ मदान्ध आखें खोल कर सामने देख। तेरी भी यही दशा होगी। तू भी एक दिन चार आदमियों के द्वारा उसी तीर पर पहुंचाया जायेगा जिस तीर पर न मालूम कितने आये और गंगा की गोद में सदा सर्वदा के लिये विलीन होते गये। उस दिन तू क्या करेगा। उस दिन 'राम नाम सत्य है' की ध्वनि तुझे क्या काम देगी। ऐ अभिमानी जीव! चेत! चेत!! भिखारियों को इस प्रकार दुतकारा मत कर। उनकी आहें लोहार की भांथी की नाईं तुझे भस्म कर डालेंगी। क्या तू नहीं जानता कि वे परमात्मा के दुलारे पुत्र हैं। वे प्रतिनिधि बन कर पृथ्वी पर परीक्षा लेने आये हैं। उनका अपमान करना उस परम पिता का अपमान करना है। ऐ प्रजा-रक्त-शोसक! फिर ऐसी बातें भूल कर भी जबान से न निकालना।

[२]

बाबा बड़ी भूख लगी है। तीन दिन से पेट में अन्न नहीं गया। पेट पीठ से सट गया है। ईश्वर तेरा भला करे। चल हट बे! देखने में तो तू कुम्भकरण का सौतेला भाई ही मालूम पड़ता है पर भीख माँगने में शरम नहीं आती। कहीं तू खुफिया पुलिस विभाग का कोई आदमी तो नहीं है। बदमाश आंखों से जल्दी दूर होजा वर्ना ऐसा डण्डा मारूंगा कि तेरी खापड़ी चूर २ हो जायेगी। क्या तू इतनी तहजीब भी अभी नहीं जानता कि दो मनुष्यों के बीच में कूद पड़ना कितनी मूर्खता है। अबे सामने से हटता है या दूं दो चार धौल धप्पड़। तुम्हारे जैसे निठल्लों को पैसे देना क्या है पैसे पर पानी फेर देना है और बेकारों की संख्या बढ़ाना है। यदि तुम्हारे जैसे काठ के उल्लुओं के फेर में रहूं तो दो चार मुवक्किलों से हाथ धोना पड़े। चल हट सामने से दूर हो।

बस बस मैंने समझ लिया। मैं आपकी वकालत पेशे के रंग व रेशों से खूब वाकिफ हूं।

आप ही जैसों से देश का नाश होगा। आप तो झूठ के अवतार ही ठहरे। झूठ बोलना तो आप का ठहरा पेशा और लोगों को ठगना और उन्हें कंगाल बनाना हो गया आपका कर्त्तव्य। भला बताइये तो सही आप काठ··· हैं या मैं? बाबू जी! मैं आप को छोड़ देता हूं पर साथ २ मना भी कर देता हूं कि हम जैसे भिखमंगों को यों दुतकार कर उन पर दुलत्तियां न चलाया करें। अगर आप को कुछ देना न था तो जबान से कह देते इतना मिजाज दिखलाने की कौन सी बात थी। मैं तो आप के भाव का भूखा हूं न कि अन्न का। यदि आप हमें गालियां देकर हजार रुपये दें तो मैं उन पर थूक दूं। क्या आप समझते हैं कि आप वकील हो गये तो आप सब से ऊंचे हो गये। मेरी नजरों में तो आप पूरे वकील हैं। नहीं, अब मैं इन पैसों को छू भी नहीं सकता इन्हें आप रखलें फल जल पान के काम में आजायेगा। भगवान् आप का भला करें।

[३]

क्यों जी बुड्ढे! इधर कहां बढ़े आ रहे हो क्या यह तुम्हारे बाप का घर है जो बिना रोक टोक चले जा रहे हो। यदि तुम जवान होते तो तुम्हें मैं फौरन से पेशतर लाल घर भिजवा देता। क्या कहा! भगवान् से डरूं। यह कैसी बेहूदी बातें करते हो। अगर तुम्हारे भगवान् होते ही तो तुम दर दर भीख ही क्यों मांगते फिरते। यह सब तो तुम्हारा ढकोसला है। पेट भरने का अच्छा तरीका निकाला है सामने से दूर हो नहीं तो तुम्हारे गांठ का पैसा भी छीन लूंगा और तुम्हारे भगवान को भी····· अबे उल्लू जाता क्यों नहीं क्या तेरी कुछ बपौती है जो इतना अड़ा हुआ है? बाबा! आप का पारा इतना ऊंचा क्यों चढ़ गया। अभी तो मैंने कुछ मांगा भी नहीं फिर आप के दिमाग में इतनी गरमी क्यों चढ़ गई। आप आर्य समाजी हैं तो इससे क्या हुआ? क्या आप किसी भिखमंगे को गाली दे देंगे? यदि आपको दिन को सूझता तो एक निरपराधी बुड्ढे पर इतने लाल पीले ही क्यों होते इससे साफ मालूम होता है कि मैं उल्लू नहीं बल्कि आप ही·····हैं। किसकी मजाल है कि मेरे बदन में हाथ लगा दे। किसकी ताकत है कि मेरे पैसों को छूये। किसकी शक्ति है कि मेरी सम्पत्ति में से एक कौड़ी ले ले। यदि तुमने जरा भी मेरे पैसे का लोभ किया तो याद रखना तुम्हारी जान पर आपड़ेगी क्योंकि यह पैसे, उसी परम पिता जगदीश्वर, दीनबन्धु, भक्तवत्सल, गरीब परवर तथा योगक्षेमवाहक प्रभू का है। तुम आंख रहते भी अन्धे हो, मस्तिष्क रहते भी बुद्धि हीन हो और जीव रहते भी निर्जीव हो। खबरदार! होशियार सचेत!!! हमारे प्रभू पर लांछनायें न लगाओ, खरी खोटी न सुनाओ बुरा भला न कहो और खिल्लियां न उड़ावो। मैं तुम्हारी खोपड़ी चूर २ कर दूंगा। तुम्हारी हस्ती दुनिया से मिटा दूंगा। तुम्हारे नाम को नेस्त नाबूद कर दूंगा और उस सरकार के दरबार में नालिश कर दूंगा जहां दूध और पानी जैसा न्याय होता है। जहां अपराधियों के लिये कड़ी से कड़ी सजा है। जहां पक्षपात का नाम नहीं, जहां पापियों को पूरा प्रायश्चित करा कर छोड़ा जाता है और जिसके दरबार में नास्तिकों की नाक काट ली जाती हैं।

[४]

क्यों जी बूढ़े बाबा! आप के चेहरे पर विषाद की रेखायें क्यों दिखाई पड़ रही हैं। आप वयोवृद्ध और विद्यावृद्ध दिखाई पड़ते हैं। आपके शरीर की कान्ति विचित्र है। आपकी आंखों की

चितवन अद्भुत है। आपके रूप में अतीव मोहकता है। आप की बातों में बड़ी ओजस्विता है। आपकी चाल निराली है। आपके आदेश उपदेश पूर्ण हैं। आपको देखने से पता चलता है कि आपने भगवत् चिन्तन में ही अपने बालों को पका डाला है। ओहो मालूम होता है आप इस पतित का उद्धार करने आये हैं। विदित होता है आज मेरा भाग्योदय हुआ है। जान पड़ता है आज उस जगन्नियन्ता की मुझ पर कृपा दृष्टि हुई है। धन्य हो प्रभो धन्य हो। आइये पधारिये। इस कुटिया को अपने चरण रज से पवित्र कीजिये। इस खाली तिजोरी को भर दीजिये। इस प्यासे प्रेम-पथ-पथिक को प्रेम-जल से निहाल कर दीजिये। इस भूखे भिखमंगे को भरपेट खिला दीजिये जिससे मैं ऐसा अघाऊं कि फिर कभी खाने की इच्छा ही न करूं। आइये! मेरे सिर और आखों पर बैठिये। बैठिये! मेरे हृदय रूपी गलीचे पर बैठ जाइये।

बस बस हो चुका भावुक तुम धन्य हो। मैं खाने के पहले अघा चुका। मेरा पेट तुम्हारे भोले भावों से लबालब भर गया। तुम्हारे निष्कपट व्यवहार से मेरी भूख जाती रही। तुम्हारी भोली बातों से भोजन का आनन्द मिल गया। मैं तुम्हारे ही जैसे भावुक भक्तों की खोज में था। मैं तुम्हारे ही जैसे भावुक के भाव का भूखा और प्रेम का प्यासा था। तुम धन्य हो। तुम साधु हो। भगवान् तुम्हारा भला करें। नारायण तुम्हें दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति दें।

हे भगवन! इस भक्त को अपने पवित्र भावों से भर दो। इसके हृदय कुञ्ज में तुम सदा निवास करो। तुम इस भावुक को अपनी कृपा कोर प्रदान करो। इस प्रेम-पथ-पथिक के सिर पर अपना विरद हस्त रख सदा के लिये निर्भीक और निष्काम बना दो। प्रेम प्याला पिला कर इसे ऐसा मतवाला बना दो कि फिर 'मैं' और 'तू' का बोध ही न रहे।

अभिलाषा

[ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम]

भगवन्! मेरे चंचल मन को सुस्थिर अचल बनादीजे।
अपने प्रेम का पूर्ण प्याला इस को नाथ पिला दीजे॥
निशि दिन इच्छा यही हृदय में होवे नाथ! सदा मेरे।
घट २ व्यापक तुम्हें निहारूं प्रति क्षण गुण गाऊं तेरे॥
जो कुछ बने करूं तव सेवा इस मन यह हो मेरा।
मन मन्दिर में रहो विराजे प्रति पल दर्शन हो तेरा॥
आंखों की पुतली के आगे उज्वल ज्योति रहे तेरी।
इकटक रहूं देखता उसको नेक न पलक झुके मेरी॥
कर्णपटों से तेरे स्वामी! वचनामृत का पान करूं।
घ्राण रन्ध्र से तव सौरभमय पद कमलों का घ्राण करूं॥
मुख से तेरे गुणगण वर्णन प्रति दिन नाथ रहूं करता।
चित्तसे चिन्तन भगवन् मन से क्षण २ मनन रहूं करता॥
हाथों से परिचर्या करके तुम से लेऊं मांग क्षमा।
पैरों से तेरे मन्दिर की प्रियतम देऊं परिक्रमा॥
अभिलाषा गुरुदेव यही है इसको पूर्ण कर दीजे।
दास अकिंचन को निज प्रभुवर शरणागत में रख लीजे॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

यत्कृपया भवेन्मुक्तिर्भक्तिः करतलेस्थिता।
मुकुन्दं तमहं वन्दे पूर्ण प्रेम स्वरूपकम्॥

शृङ्गार निष्ठा

मंसाराम— महाराज! कल आपने सख्य निष्ठा का वर्णन किया था और उस निष्ठा के भक्तों की कथायें सुनाई थीं क्या इस निष्ठा से आगे

भी कोई निष्ठा है। यदि है, तो उसका स्वरूप सुनाइये और उस निष्ठा के भक्तों के चरित्र भी सुनाइये, क्योंकि भक्तों की कथायें सुनने से ही भगवद्भक्ति की प्राप्ति होना संभव है।

मस्तराम-भाई-सखा निष्ठा से आगे शृंगार निष्ठा है। शृंगार रस को उज्ज्वलरस और शुक्ल-रस भी कहते हैं। हे मंसाराम! यह वह रस है कि जिस रसके ज्ञान, वैराग्य और भक्ति सब सेवक और दास हैं। अन्य धर्मों की तो बात ही क्या है इस शृंगार रस का यह गुण है कि एक क्षण में अथाह प्रेम उत्पन्न करके राजा को रंक और रंक को राजा बना देता है। इस रसके बराबर मोहन गुण न तो तंत्र में है, न मन्त्र में है और रागादि तो एक तुच्छ बात है। जितने भक्त पूर्व में हुए हैं, जो आगे होंगे, और जो अब हैं, वे सब इस रसके अवलम्बन से अपनी मनोवाञ्छित पदवी को पहुंचे हैं और पहुंचेंगे।

हे मंसाराम! इस रस की महिमा अपार और अथाह है, यदि कोई भगवत् की महिमा का और चरित्रों का वर्णन कर सके तो रस की भी महिमा वर्णन कर सके। जैसे भगवत् की महिमा का वर्णन नहीं हो सका, इसी प्रकार इस रसकी महिमा का वर्णन नहीं हो सका, गोपिकायें एक तो स्त्री थीं, ग्राम की रहने वालीं थीं, न तो उन्होंने कुछ विद्या पढ़ी थी, न कोई साधन किया था, न वे कोई साधन जानती थीं, जाति से भी उत्तम न थीं, इस रस के प्रभाव से उस पदवी पहुंचीं कि सब जगत् के पितामह और उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा जी ने भी उनकी चरणरज को अपने शिर पर धारण किया और उनके चरित्रों का जहाज संसार समुद्र से पार उतारने को ऐसा प्रवृत्त हुआ कि कर्म भोग रूपी आंधी का कदापि भय नहीं है।

हे मंसाराम! शृंगार रस के उपासक इस रस को मुख्य वर्णन करके कहते हैं कि ब्रह्मानन्द इसी रससे प्राप्त होता है, यह उनका कथन सोलह आने ठीक है, क्योंकि जब भगवत् आराधन, ज्ञान अथवा भक्ति के द्वारा होगा, तो कोई भगवत् की झलक, सुन्दरता और माधुर्य उपासक के मन में ऐसी प्रकट होगी कि उसके आनन्द से सब मिठाई और तीनों लोक के उत्तम पदार्थ तृण के समान समझ पड़ेंगे, उपासक उस झलक के दर्शन में बेसुधि और मग्न हो जायगा। जब तक भगवत् की सुन्दरता की झलक मन में न आवेगी तब तक भगवत् की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकी। इससे निश्चय हुआ कि केवल शृंगार रस से ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है।

मंसाराम-महाराज! यदि शृंगार रस मुख्य है, तो शास्त्रों में जो दास्य, सख्य, वात्सल्य इत्यादि कई प्रकार की निष्ठायें लिखी हैं उनके लिखने का क्या प्रयोजन है। केवल शृंगार निष्ठा लिख देना पर्याप्त था! सिवाय उसके नव प्रकार की भक्ति में शृंगार का कहीं नाम भी नहीं है, फिर शृंगार रस को मुख्य कैसे बताया जाता है?

मस्तराम-भाई! वेद, पुराण, शास्त्र इत्यादि जितने ग्रन्थ और आज्ञा हैं, वे सब शृंगार रसका ही वर्णन करते हैं और शृंगार ही मुख्य है। जहां२ भगवत् आराधन का जो वर्णन है, वह सब शृंगार का अर्थ समझना चाहिये, क्योंकि सुन्दरता की झलक के साक्षात्कार हुए बिना भगवत् की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकी और दास्य, सख्य, वात्सल्य इत्यादि भक्ति के प्रकार जो शास्त्रों में लिखे हैं, वे भी शृंगार के ही विस्तार हैं। जैसे भक्ति एक है, तो भी जिस २ प्रकार से जो २ मन लगता है, उसी प्रकार की वह एक ही भक्ति हो जाती है, उसी

प्रकार भगवत् की शोभा और माधुर्य का चिन्तन दास्य आदि सब निष्ठाओं में, निश्चय हुआ है। जिस किसी ने भगवत् को अपना स्वामी मान कर उनकी सुन्दरता का उनके स्वरूप और माधुर्य का चिन्तन किया, वह दास निष्ठा ठहरी और जिस किसी ने मित्र जान कर उस रूप का ध्यान किया, वह सख्य निष्ठा हुई और जिस किसी ने पुत्र जान कर चिन्तन किया, वह वात्सल्य निष्ठ हुई, इसी प्रकार सेवा, अर्चा और शरणागत इत्यादि का विचार कर लेना चाहिये। इस प्रकार वेद और पुराणों के प्रमाण से निश्चय हो गया कि भगवत् का शृंगार और माधुर्य मुख्य है।

मंसाराम-महाराज ! भगवत् के करुणा, दयालुता और भक्तवत्सलता आदि गुण भी तो स्थल स्थल पर लिखे हैं, उन गुणों के कारण से भगवत् में प्रीति हो सकती है, तो शृंगार की क्या आवश्यकता है।

मस्तराम-भाई ! जिसको तू प्रीति कहता है, वह किस वस्तु में होती है ? यदि किसी रूप और झलक में होती है, तो उसी का नाम शृंगार है और वह ही माधुर्य है, जो प्रीति किसी शोभा और झलक के चिन्तन में नहीं होती किंतु अन्य किसी बात में होती है, तो वह मिथ्या है, क्योंकि किसी सुन्दरता या झलक के प्रकाश हुए बिना कदापि दृढ़ प्रेम नहीं हो सका। दूसरा उत्तर यह है कि जिस प्रकार संसारी प्रीति में जिस पर आसक्त होते हैं, उसकी सुन्दरता का वर्णन करते हैं, तो उसके बोलने, चालने, मिलने इत्यादि स्वभाव का भी वर्णन करते हैं, इसी प्रकार भगवत् के प्रेम के वर्णन में भगवत् के रूप और माधुर्य का वर्णन करना तो मित्र की सुन्दरता के वर्णन के समान है और भगवत् की अद्वैतता, कृपालुता, करुणा, भक्तवत्सलता, ईश्वरता, सर्वज्ञता और दूसरे गुण जैसे अच्युत, अनन्त, व्यापक, अन्तर्यामी, पूर्णब्रह्म, परमात्मा, सच्चिदानन्दघन इत्यादिक वर्णन मित्र के स्वभाव के वर्णन के समान हैं।

मंसाराम-महाराज ! एक वचन से भक्ति और शृंगार एक ही प्रकार के जानने में आते हैं। अर्थात् एक स्थल पर तो, दास्य, सख्य, वात्सल्य, इत्यादि को भक्ति के प्रकार में बताया और यहाँ शृंगार निष्ठा में उन दास्य आदि निष्ठाओं को शृंगार का अंग बताया। जबकि भक्ति दशा प्रेमा सक्ति की है और शृंगार प्रियवल्लभ की सुन्दरता को कहते हैं, तो दो भिन्न २ दशा एक कैसे हो सकती हैं।

मस्तराम-भाई ! यह कथन सत्य है। यद्यपि दोनों प्रकार अलग २ हैं, तो भी एक से दूसरे का सम्बन्ध ऐसा है कि एक के बिना दूसरे का प्रकाश नहीं होता, क्योंकि सुन्दरता बिना प्रेम कदापि नहीं हो सका और इसी प्रकार प्रेम बिना सुन्दरता को ग्राहक कोई नहीं है। जैसे जब जगत् न था, तब भक्त भी नहीं थे, जब भक्त न थे, तब ईश्वर का कौन जानता था, और जब प्रलय हो जायगी, तब भगवत् को कौन जानेगा और उनकी सुन्दरता पर कौन आसक्त होगा, जब कि प्रेम और सुन्दरता ऐसे सम्बन्धी हुए कि अलग नहीं हो सकते, तो उनके सब अङ्ग मिश्रित होकर एक के समान हों, तो क्या आश्चर्य है और विरुद्ध ही क्या है। सिवाय इसके अन्त में प्रेम करने वाला और जिस में प्रेम किया जाता है, दोनों एक हो जाते हैं अर्थात् प्रेम करने वाला अपनी सब दशायें भूल कर सब अंगों में अपने प्रियवल्लभ का रूप हो जाता है, तो इस प्रकार कहने में भी शंका करना योग्य नहीं है। सिवाय इस के शृंगार और भक्ति

दोनों भगवद्रूप हैं, कुछ भेद नहीं है. इस प्रकार से भी शंका को अवसर नहीं है। निस्संदेह शृंगार रस सब रसों में मुख्य है और निश्चय भगवत् की प्राप्ति करा देता है।

हे मंसाराम! यह रस विभाव, अनुभाव सात्विक और व्यभिचारी चार सामग्रियों से उत्पन्न होता है। पहिली सामग्री विभाव में भगवत् सच्चिदानन्दघन, पूर्ण ब्रह्म, नवयौवन, सब शोभा और सुन्दरता के सार, श्याम सुन्दर स्वरूप, दिव्य वस्त्राभूषणों से सजे हुए कि जिनके सब अंगों पर करोड़ों कामदेव निछावर होते हैं, विषयालम्बन हैं. जिस उपासक की भगवत् की सुन्दरता और और शृंगार पर जैसी प्रीति हो, वह अपनी उपासना के अनुसार भगवत् का ध्यान करे जैसा कि स्थल २ पर शास्त्रों में वर्णन किया है और मैंने भी जहां तहाँ वर्णन किया है। भगवद्भक्त, जो इस सुन्दरता और शृंगार के महा आसक्त और ध्यान करने वाले हैं, वे इस विभाव में आश्रयालम्बन हैं। हैं। शृंगार रस की दूसरी सामग्री विस्तार से ग्रन्थ के आदि में बताई है।

हे मंसाराम! शृंगार रस में उपासक लोग दो भेद वर्णन करते हैं, एक शृंगार और दूसरा माधुर्य शृंगार तो उस सुन्दरता और प्रेम से तात्पर्य है, जो नायक और नायिका के बीच में हो और दोनों के बिना शृंगार नहीं कहा जाता। उसमें उत्तम पद स्वकीया नारीका अर्थात् ब्याही स्त्री और पति के शृंगार का है। भगवद्भक्तों में यह पदवी लक्ष्मी जी, जानकी जी और रुक्मिणी जी पर समाप्त हुई है, और किसी २ के वचन से श्रीराधिका जी भी स्वकीया है। आजकल किसी उपासक ने इस पदवी का न तो देखा है और न सुना है। दूसरी पदवी शृंगार की परकीया नारीका है, यह पदवी गोपियों पर समाप्त हुई है। आज कल यह भाव किसको हो सक्ता है! यदि कोई किसी गोपिका का अवतार लेवे, तो हो सक्ता है, जैसे कि मीराबाई जी, करमैती जी, नरसी जी, हरिदास जी इत्यादि भक्त हुए हैं। शृंगार की रीति और प्रीति विशेष करके इसी पदवी में बन आती है। आज कल जो उपासक हैं, उनके ये भाव हैं कि कोई तो सख्यता की मुख्यता लिये हुए दासी भाव रखते हैं, किसी को दासी भाव की मुख्यता और सख्यता की गौणता है, कोई अपने आपको युगल की दासी जानते हैं, सख्यता से कुछ प्रयोजन नहीं रखते, कोई अपने आपको श्रीप्रियाजी की दासी जान कर उनकी प्रसन्नता में प्रियतम की प्रसन्नता मानते हैं और इस अन्त पदवी के मुख्य उपासक हित हरिवंश जी की सम्प्रदाय वाले हैं।

हे मंसाराम! सब शृंगार के उपासकों की यह रीति है कि युगल शृंगार और विहार में अपने भाव के अनुसार सब समय प्राप्त रहते हैं, कोई समय अन प्राप्त और परदे का नहीं है और प्रिया प्रियतम के मन की बात जानने वाले, सन्देश में चतुर और मान के समय मनाने और मिलाने में प्रवीण ऐसे २ सैकड़ों हजारों भावों से सेवा और चिन्तवन करते हैं। भाव बहुत सूक्ष्म और अति कठिन है। उपासक ही समझ सक्ते हैं, विषयासक्त पुरुष नहीं समझ सक्ते।

हे मंसाराम! शृंगार की उपासना अनादि है, चारों युगों में सदा होती है। श्रीरघुनन्दन महाराज के अपार रूप को देख कर बहुत से ऋषीश्वर और योगीजन मोहित और आसक्त हो गये और उस रूप और शृंगार के पूर्ण सुख और आनन्द की प्राप्ति के लिये उन्होंने श्रीमहारानी जानकी जी में मानसी दासीभाव और सख्यता से मन को

लाया। माधुर्य का अर्थ यद्यपि मिठाई है परन्तु यहां सुन्दरता से तात्पर्य है। माधुर्य के उपासक अपने आपको सखी नहीं मानते किन्तु भगवत् के माधुर्य के ऊपर आसक्त और अनुरक्त होते हैं, उन में कई भेद हैं। एक तो वे हैं कि जो केवल भगवत् के माधुर्य के उपासक हैं, प्रिया जी के ध्यान से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते, दूसरे वे हैं कि जो युगल स्वरूप का यानी प्रिया प्रियतम का चिन्तन और ध्यान करते हैं, उनमें भी एक यूथ वाले भगवत् की ईश्वरता मुख्य मानते हैं और प्रिया जी को आद्या, सब ब्रह्माडों की माता और भगवत् आश्रयाभूत जानते हैं। दूसरे ऐसे हैं कि प्रियप्रीतम को एक मानते हैं। जैसे जल और तरंग अथवा सर्प और सर्प का कुण्डल वस्तुतः एक हैं, कहने मात्र दो कहे जाते हैं, इसी प्रकार प्रिया और प्रियतम एक हैं, कहने मात्र दो हैं। तीसरे ऐसे हैं कि प्रिया-जी की परत्व अधिक करते हैं और प्रियतम को न्यून करते हैं। इस तीसरे भाव की बात आगे विस्तार से वर्णन करूंगा।

हे मंसाराम! माधुर्य के उपासकों की सेवा पूजा की रीति ऊपर कहे हुए भावों के सिवाय और भी कई प्रकार की है अर्थात् कोई २ तो युगल स्वरूप की सेवा पूजा के समय अपने आपको दो चार वर्ष का बालक चिन्तन करके सेवा पूजा करते हैं और किसी की यह रीति है कि आप तो भगवत् की सेवा करते हैं और महारानी जी की सेवा के निमित्त अपनी माता, स्त्री, भगिनी इत्यादिको अथवा अपने घर की सब स्त्रियों को महारानी जी की दासी समझ लेते हैं और किसी २ की यह रीति है कि ब्रह्माणी, भवानी, और इन्द्राणी इत्यादि को महारानी जी की सेवा करने वाली जानकर भगवत् की सेवा पूजा आप करते हैं, सिवाय इसके स्वकीया परकिया भाव अलग रहा। रामानुज संप्रदाय और राम उपासकों में तो परकीया भाव कदापि शोभित नहीं हो सका, स्वकीया भाव से सेवा और आराधन वर्तमान है। श्रीकृष्ण उपासना में विशेष करके परकीया भाव से आराधना योग्य है और होती है। उसका भेद यह है कि निम्बार्क संप्रदाय में स्वकीया भाव से पूजन करते हैं और श्रीकृष्ण और राधिका महारानी के विवाह का होना पुराणों के प्रमाणों से मानते हैं और विष्णु स्वामी की संप्रदाय वाले यद्यपि श्रीकृष्ण स्वामी के बालचरित्र के उपासक हैं परन्तु राधिका जी को निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रमाण के अनुसार स्वकीया भाव से श्रीकृष्ण स्वामी की परमप्रिया जानते हैं और माध्व संप्रदाय में परकीया भाव की रीति है और मन की रुचि दूसरी बात है। स्मार्तमत वालों में कोई सिद्धान्त रीति का नियम नहीं है, जैसे चरित्रों और भावों पर मन संमुख हो जाय, वैसा ही मान लेते हैं।

हे मंसाराम! शृंगार और माधुर्यभाव में जो साज और शृंगार प्रिया प्रियतम का ध्यान में अथवा प्रत्यक्ष करना चाहिये और जो प्रिया प्रियतम आप परस्पर के मिलने मिलाने, देखने दिखलाने, अपने २ सजावट रखने में और विहार आनन्द की सामग्री मन से शोधि २ और बनावट से तैयारी की उमंग रखते हैं और जो खेल, हंसी, वाग्विलास, प्यार और चाह मन में होती हैं, उनका वर्णन अगणित शेष और शारदा से करोड़ों कल्प तक कदापि नहीं हो सका और जिन भक्तों की उपासना सिद्ध हो गयी है और वह सामग्री और समाज जिनके मन में समा गयी है, उनको भी सामर्थ्य नहीं है कि वर्णन कर सकें, मन ही मन में उस आनन्द का अनुभव करते हैं, सो फिर अन्य कोई कैसे कह सके

जो मित्र परम प्रेमी हैं, जिनका मन आपस की सुन्दरता पर परम आसक्त है, परस्पर मिलने की चाह और उमंग में भरे हुए हैं, त्रैलोक्य के ऐश्वर्य और सम्पत्ति से जहाँ तक आनन्द और सजावट की सामग्री शास्त्रों में लिखी है, जो कुछ देखते हैं और जहां तक मन जाता है, वह सब सामग्री तैयारी करें तो प्रिया प्रियतम के शृंगार, विहार, आनन्द, सुख, शोभा और सुन्दरता के सामने ऐसे हैं कि जैसे सौ करोड़ सूर्य के सामने एक बालू का कण हो, इसलिये उपासक लोग अपनी चाह, मन की दौड़ और देखे सुने के अनुसार जिस प्रकार जितना युगल स्वरूप का ध्यान और आराधन कर सकें, उतना ही अच्छा है। जैसा चिन्तवन करेंगे, वह ही वाञ्छित पद की प्राप्ति करा देगा।

हे मंसाराम! प्रिया प्रियतम परस्पर प्रेमासक्त स्नेहियों में शिरोमणि हैं, इसलिये शृंगार और माधुर्य के जो चरित्र हृदय की आँखों को दिखायी पड़ें, वे सब भगवत् के किये हुए होंगे, नये चरित्र कोई नहीं होंगे, इसलिये इस रूप अनूप में जिस प्रकार मन लगे, उसी प्रकार लगाना चाहिये ऐसा करने से परमानन्द, ब्रह्मानन्द, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और चारों पदार्थ आप से आप प्राप्त हो जाते हैं।

हे मंसाराम! ऊपर कह आया हूं कि कोई प्रिया जी की परत्व और प्रियतम की किंचित न्यूनता वर्णन करते हैं। इसका वृत्तांत यह है कि चारों संप्रदायों में ऐसी रीति आज तक किसी ने प्रकट नहीं की है। कोई सौ दो सौ वर्ष से वीर राघवाचार्य ने यह शाखा निकाली है कि विष्णु नारायण से लक्ष्मी जी को अधिक लिखा है और वीरराघवी मत चलाया है, यह मत दुर्गा उपासकों के मत से कुछ मिलता है। मत में थोड़े लोग हैं और मद्रास में उनका गुरुद्वारा है।

हे मंसाराम! शृंगार और माधुर्य के उपासक ध्यान करने में प्रिया प्रियतम की सुन्दरता और शृंगार की उपासना में एक मत हैं और दोनों का आरंभ और परिणाम एक ही प्रकार है इसलिये शृंगार और माधुर्य के उपासकों को एक ही निष्ठा में गिनना उचित है। एक भक्त भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना करता है।

हे दीनवत्सल! हे कृपा सागर! हे करुणाकर! हे पूर्णतातिहर! अब इस दीन की ओर भी कुछ ऐसी कृपादृष्टि कीजिये कि आपके माधुर्य का चिन्तवन करता हुआ आनन्द में मग्न होता हुआ देह, गेह धन, धाम आदि को भूल जाऊं। यद्यपि मेरा कोई ऐसा आचरण नहीं है और न मुझ में कोई ऐसा गुण है कि जो आपके कृपा और दया करने के योग्य होऊं फिर भी जब आपके दीनवत्सल और पूर्णतातिभंजन विरद पर दृष्टि जाती है तो दृढ़ आशा होती है कि आप कृपा करेंगे, अवश्य करेंगे, निश्चय करेंगे, इसलिये आप अपने विरद की ओर और अपनी ओर देख कर ऐसी कृपा कीजिये कि आपके माधुर्य का अहर्निश चिन्तवन किया करूं, जैसा कि किसी ने कहा है:-

जो वेद जानते हैं, वे वेदवेत्ता हैं, वे सब कुछ जानते हैं, उनको कुछ जानना नहीं है, वे वेद का व्याख्यान करते रहें, जो लोक को जानते हैं, वे लोक व्यवहार में कुशल होकर अनादिकाल से चली आयी हुई लोक की लकीरों पर फकीर हो कर लड़ते रहें, जो लोग तप को जानते हैं, वे भूखे मरते रहें, तीनों तापों में तपते रहें, पंचाग्नि के साथ समाधि लगा कर चारों तरफ से और ऊपर से जलते रहें, जो योग को जानते हैं, वे यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान करके

महात्मा कबीर दास जी

(ले० श्री नर्मदा प्रसाद खरे)

समाधि अणिमादि आठों सिद्धियां प्राप्त करके युग २ अर्थात् चिरकाल तक जीते रहें, जो ज्योति को जानते हैं, वे सर्वदा ज्योति का ध्यान करते हुए ज्योतिमय बने रहें, मुझे उनसे कुछ प्रयोजन नहीं है, मैं तो हे यशोदानन्दकुमार ! तेरी चेरी हूं, चाहे कोई करोड़ों वर्ष तक करोड़ों स्त्री पुरुष मेरा उपहास करते रहो ! चाहे कोई कुलटा कहे, अकुलटा कहे, कुलीन कहे, अकुलीन कहे, रंडाने कहे, कलंकिनी कहे, कुमारी कहे, मैंने तो देवलोक, परलोक, नरलोक समस्त लोक त्याग दिये हैं, लोकों से न्यारा एक अलौकिक लोक ले लिया है, उसी लोक की निवासिनी हो गयी हूं, सब लोकों से न्यारी हूं, तन जाय, धन जाय, जन जाय, जीव जाय, प्राण जाँय, मैं तो किसी प्रकार टरनी नहीं टारी हूं। वृन्दावन विहारी, बनवारी, मुकुट-धारी, पीतपटधारी, उसी मूर्ति के ऊपर वारी हूं! माथे पै मुकुट देख कर, चन्द्रिका की चटक देख कर, छवि की लटक देख कर बावली हो गयी हूं, लोचन विशाल देख कर, गले में गुंजमाल देख कर, अधर रसाल देखकर चित्त में क्षोभ हो रहा है, कुण्डलों की हलन देख कर अलकों की चलन देख कर, पलकों की चलन देख कर सर्वस्व हार चुकी हूं, पीताम्बर की छोर देख कर, मुरली की घार देख कर, साँवरे की ओर देख कर, ऐसी टिकटिकी बन्ध गयी है कि हटती ही नहीं, देखा ही करूं, ऐसा जी चाहता है !

———

महात्मा कबीर दास का जन्म एवं मृत्यु काल भिन्न भिन्न ग्रन्थों में अनेक प्रकार से लिखा है। परन्तु बहुमत से इनका जन्म समय सम्वत् १४५५ ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा ही माना जाता है। यों तो प्रत्येक महापुरुष के सम्बन्ध के जन्म समय, जाति और निवास स्थान में मत भेद पाये जाते हैं। उनका ठीक ठीक निर्णय करना असम्भव है। पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय ने भी इसी को जन्म समय और भक्ति सुधा बिंदु-स्वाद के अनुसार १५५२ की अगहन-सुदी एकादशी को मृत्यु समय माना है, मिश्र बन्धुओं ने भी इसी पर जोर दिया है। यों तो फिर कबीर कसौटी में सं० १४५५ ही जन्म समय माना गया है परन्तु मृत्यु समय १५०५ लिखा है। इस सम्बन्ध में वेस्कट महाशय ने "कबीर एण्ड दी कबीर पंथ" में ये काल संवत् १४४७ और १५७५ लिखे हैं।

आप के पिता का नाम नीरू और पूज्या माता का नाम नीमा था। ये जाति के जुलाहे थे। ये काशी के रहने वाले थे। इनके जन्म समय की कथा इस प्रकार कही जाती है। कहते हैं, कि नीरू महाशय जो जाति के जुलाहे थे, अपनी तरुणी स्त्री नीमा का गौना करके अपनी ससुराल से लौट रहे थे। दैव योग से वे लहरता नामक तालाब के किनारे से जो अब भी काशी में विद्यमान है, निकले। उस नवीन दम्पति को एक छोटा सुन्दर बच्चा इस तालाब के किनारे पड़ा मिला। नीरू ने उसे बड़े प्रेम से उठा लिया नीमा ने उसे प्रेम सहित अपनी गोद में पाल कर बड़ा

किया और भविष्य में उसी का नाम कबीर रखा गया कहते हैं, इस होनहार बच्चे को एक ब्राह्मण स्त्री छोड़ गई थी। क्या एक भारतीय माता अपने हृदयांश प्राण प्यारे पुत्र को इस भांति कूड़े में फेंक देगी? माता का हृदय कैसा होता है यदि इसका अनुभव करना हो, तो मां बन कर ही यह किया जा सकता है। जो माँ अपने पुत्र के लिये धन, दौलत, धोती, लुटिया सब कुछ त्यागने के लिये तैयार हो। क्या वह अपने स्नेह पुत्र को इस भान्ति छोड़ सकती है? फिर भी क्या हुआ—? हिन्दू समाज के इस प्रकार अनेकों चमकते हीरे देखते देखते मिट्टी में फेंकदिये जाते हैं। यह हमारी समाज का दुर्भाग्य है हमें तो यह नहीं जंचता क्योंकि कबीर साहब ने अपने को ब्राह्मण न कह कर बार बार जुलाहा कहा है।

"तू ब्राह्मण मैं काशी का जुलाहा, बूझी मोर गियाना॥
"काशी में हम प्रकट भये हैं, रामानन्द चिताए॥"

इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि नीमा और नीरु के ही पुत्र थे। इसी जुलाहा-वंश में इनने जन्म लिया था। काशी ही आप का जन्म स्थान था।

जब कबीर बड़े हुए, तब वे अपने माता के कार्य में सहयोग देने लगे। ये भी कपड़ा बुनते थे, परन्तु इनके बाल्य-काल में ही त्याग ने इन्हें ऊंचे उठा दिया था। ये दिन भर कठिन परिश्रम के बाद कपड़ा बुनते थे और संध्या को बाजार में जाकर गरीब, अन्धे, लंगड़े तथा साधुओं को वह दान कर आते थे। इन्हें दान कर प्रसन्नता होती थी सच है, (होन हार बिरवान के होत चीकने पात) इनका बालक पन ही इन्हें आगे चल कर भक्ति मार्ग पर अग्रसर कर सका। इसमें सन्देह नहीं कि इनका यह व्यवहार देख कर इनके माता पिता दुःखी रहते थे, परन्तु इसने अपना यह कार्य न छोड़ा। छोड़ते भी कैसे? यह तो एक ईश्वरीय प्रेरणा थी। इनके माता पिता ने कई बार इनको इस कार्य पर से इन्हें डांटा भी परन्तु इनने साफ साफ कह दिया कि "मैं ने क्या बुरा किया? दान दे दिया है।" माता पिता यह सुन चुप हो जाते।

कबीर साहब में बालकपन में ही धार्मिकता के सब लक्षण विद्यमान थे। ये जब कहीं उपदेश, या कथा इत्यादि कही जाती थी, वहां अवश्य जाते थे आप तिलक इत्यादि लगा कर राम-नाम' जपा करते थे। इनकी यह दशा देख कर लोग बहुत प्रसन्न होते और कहते थे, कि सचमुच यह लड़का भविष्य में कोई महात्मा होगा लोगों ने इनसे कहा जब तक तुम्हारा कोई गुरु नहीं है, तब तक यह भक्ति निस्सार है, इसका कोई परिणाम न निकलेगा। उस समय काशी में महात्मा रामानन्द जी की अधिक ख्याति थी। वे ही सब से उच्च गिने जाते थे। कबीर ने चाहा कि मैं उनका शिष्य हो जाऊं। परन्तु जब इन्होंने सुना कि वे मुसलमानों को दीक्षा नहीं देते, तब ये बड़े निराश हुए। परन्तु इन्होंने उनके शिष्य होने की अच्छी युक्ति सोची।

रामानन्द जी काशी के मणि कर्णिका घाट पर प्रति दिन अरुणोदय में स्नान करने जाते थे। एक दिन कबीर गंगा की सीढ़ियों में लेट गये, उषाकाल में कभी अन्धेरा भी रहता है, धोखे से रामानन्द जी के पैर कबीर पर पड़ गये। उन्होंने पश्चात्ताप करने के लिये "राम राम" कह दिया। कबीर इसी को गुरु मंत्र समझ इसी का जप करने लगे उन्होंने कहा भी है:—

"काशी में हम प्रकट भये हैं रामानन्द चिताये।"

अब क्या था? ये अपने को रामानन्द जी का शिष्य कहने लगे, परन्तु तब उन्होंने इन्हें बुलाकर पूछा, कि मैंने तुझे, कब दीक्षा दी है? तब इन्होंने

उस दिन का सब समाचार बता दिया। यह सुन कर रामानन्द इन पर बहुत प्रसन्न हुए और तब से इन पर प्रेम करने लगे कबीर साहब ने कई जगह रामानन्द जी को गुरु कहा है। रामानन्द ने अपने शिष्यों में कबीर को ही सब से बड़ा माना और गुरु के मरने के पश्चात् इनने एक मत चलाया जिसे "कबीर-पन्थ" कहते हैं। इस मत को मानने वाले हजारों लोग अभी भारत में हैं। इसमें हिन्दू मुसलमान दोनों हैं।

कबीर ने शिक्षा नहीं पाई। वे कुछ भी नहीं पढ़े थे, परन्तु वे एक अच्छे कवि थे। इनके काव्य अब तक विद्यमान हैं। इन्होंने जो कविता की है वह सब मौखिक थी इनके शिष्यों ने उसे लिखा और इसीसे कहीं उसमें त्रुटियां पाई जाती हैं। इन्होंने जो कविता बनाई बिल्कुल निष्पक्ष भाव से हिन्दू मुसलमान दोनों के गुण दोष बताती है। इन्होंने जो अपने पढ़ने लिखने के सम्बन्ध में लिखा है। वह इन्हें और भी ऊंचे उठा देता है।

"मसि कागज छूयो नहीं, कलम गही नहि हाथ।
चारिउ जुग का महातम, कबिरा मुख जनाई बात ॥"

सांसारिक लोग गौरव पाकर अपने को भूल जाते हैं, उन्हें गर्व हो जाता है, वे किसी से सीधे नहीं बोलते। अपने को मनुष्य योनि से कुछ श्रेष्ठ समझने लगते हैं। महात्माओं में यह बात नहीं। "महात्मा और दुरात्मा में यही तो एक भेद है कि इनके मन, वचन, कर्म एक होते हैं, कबीरदास भले ही ईश्वर के एक अविचल भक्त थे, उन्होंने भक्ति से सम्बन्ध रखने वाले कई कार्य किये, परन्तु अपने को हमेशा एक छोटा मोटा जुलाहा समझा। यह इनके चरित्र की एक विशेषता है। आपने अपना जुलाहा का काम नहीं छोड़ा। यद्यपि सुना जाता है आप कहा करते थे।

'कासी का मैं बासी ब्राह्मण, नाम मेरा परवीना।
एक बार हरि नाम बिसारा, पकरि जुलाहा कीना ॥"
"भाई मेरे कौन बुनेगा ताना।"

आपने अपना विवाह भी किया था। इसीसे आपने अपनी रचनाओं में जहां तहां विवाह न करके जंगल में तपस्या करने के सम्बन्ध में कहा है–

कनवा फराय जोगी जटवा बढ़ौले।
दाढ़ी बढ़ाय जोगी होई गये बकरा ॥
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले।
काम जराय जोगी बनि गये हिजरा ॥

आपका विवाह बनखंडी वैरागी की पालिता कन्या के साथ हुआ था। आपने बहुत समय तक गार्हस्थ्य सुख भोगा उसके बाद आप के कमाल और कमाली नामक पुत्र और कन्या उत्पन्न हुई। लोई एक अनुपम सुन्दरी थी। सुन्दरता-तथा सुसंगति की तो वह खानि थी। इसने कबीर के ईश्वर भजन और सतसंग को देख कर इनके साथ विवाह किया था। लोई का हृदय बड़ा साफ था। वह खराब से खराब और अच्छी से अच्छी बात कबीर से कह देती थी। कबीर उस की सेवा देख बहुत प्रसन्न होते थे। एक बार कबीर साहब के यहां कोई अतिथि आये। बेचारों के घर में उनका आतिथ्य-सत्कार करने के लिये कुछ न था। बड़ी आपत्ति में पड़े। लोई एक साहूकार के यहां से सामान ले आई। वह साहूकार लोई की सुन्दरता पर मरता था। रात को जब लोई वहां जाने को तैयार हुई। तब पानी बरसने लगा कबीर उसके वचन पूरे करने के लिये अपनी स्त्री को कन्धे पर बैठा कर साहूकार के घर ले गये। जब उसने देखा कि यह पानी बरसने में आई है। परन्तु इसके पैर तक खराब नहीं हुए, समझ गया, दाल में काला अवश्य है। जब तब भेद खुला, तब वह कबीर

साहब के पैरों पर गिर पड़ा और क्षमा मांगी। उस दिन से वह कबीर का शिष्य हो गया। बेचारा बहुत लज्जित हुआ इससे कबीर के हृदय की स्वच्छता मालूम होती है।

इनने अपनी पुत्री के सम्बन्ध में तो कुछ नहीं कहा परन्तु कमाल के सम्बन्ध में जहां तहां उल्लेख किया है। कबीर कमाल से असन्तुष्ट थे, स्वयं कबीर ने कहा है–

"बूड़ा वंस कबीर का उपजे पूत कमाल।
हरिका सुमरिन छोड़ के, घर ले आया माल॥"

कबीर साहब का परोपकार, भक्ति देख कर स्वयं भगवान को कई बार कष्ट सहना पड़ा है, एक समय की बात है, कि कबीर साहब ने दो थान कपड़ा बनाया। उसे बाजार में बेचने ले गये, परन्तु दया आगई साधुओं को बांट दिया। खाली हाथ चले आये। घर आये भोजन करने बैठ गये। कहने लगी, मां आज तो घर में खाने को नहीं था। यह कहाँ से आया?" माताने कहा "बेटा! तुम्हीं ने तो बाजार से एक आदमी के हाथ भेजा है।" यह सुन कर कबीर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने समझा हो न हो भगवान् ही को यह कष्ट सहना पड़ा, तब से और भी इनकी ईश्वर में भक्ति बढ़ने लगी। आप सत्य के पक्षपाती थे। आपको पक्षपात तो छू तक नहीं गया। आपको हिन्दू मुसलमानों पर एक सा प्रेम था।

आप जाति पाति को व्यर्थ समझते थे। हिन्दू मुसलमानों का भेद व्यर्थ था आपने हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों की आलोचना खूब की है आपका कहना था। "ईश्वर एक है। उसी को सब धर्म वाले मानते हैं। कोई उसे राम कहता है, कोई रहीम और कोई कुछ।

"अल्ला, राम, रहीम, केशव, हरि, हजरत नाम धराया।"

इसलिये हिन्दु मुसलमानों को आपस में नहीं लड़ना चाहिये हम एक 'साहब की सब सन्तान हैं। मुसलमान कुरानशरीफ को ईश्वर की वाणी मानते हैं, सो हिन्दू वेदों को ईश्वर के बनाये कहते हैं। इसमें लड़ने झगड़ने की बात क्या है। कबीर साहब कहते थे यदि परमेश्वर की भक्ति किसी के हृदय में है तो वह चाहे जिस धर्म का हो अवश्य मान्य और पूज्य है।

मनुष्य को अपने मन, वचन और कर्म से पवित्र होना चाहिये, तभी ईश्वर मिल सकता है। यह नहीं कि मन में कपट और जीभ में धर्म–

"पंडित होय के आसन मारे, लम्बी माला जपता है।
पेट में तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है॥"

ये किसी से डरते नहीं थे। एक तो वैसी ही ईश्वर भक्ति के नशे में उद्विग्न से रहते थे, दूसरे साच के वातावरण में पले थे। भले ही उस समय सिकंदर लोदी भारत का बादशाह था, परन्तु इन्होंने कह ही डाला था, 'झूठा रोजा झूठी बूंद।" इसके फल स्वरूप गंगा में बांध कर फिकवा दिये गये थे। परन्तु किसी प्रकार बच गये।

"गंग लहर मेरी टूटी जंजीर, मृगछाला पर बैठ कबीर।
कहु कबीर कोई संग न साथ, जल थल राखत है रघुनाथ॥

इस प्रकार आप के जीवन में कई कठिनाइयां आई। कई विचित्र घटनाएं हुई। जिससे और भी आप ईश्वर पर दृढ़विश्वास करने लगे।

लोगों का ऐसा विश्वास है, कि मनुष्य काशी में मरता है तो मोक्ष पाता है, इस का घोर विरोध करने के लिये आपने अपनी आजन्म की जन्म भूमि को छोड़ दिया और गोरखपुर जिले के मगहर ग्राम में चले गये। ये कहते थे कि यदि मैं काशी में मरूंगा तो इसमें राम क्या कृपा होगी।

"जो कबीरा काशी मरै, तो रामै कौन निहोर।"

भक्ति-सुधा-बिन्दु-स्वाद के कथन के अनुसार आपने सं० १५७५ में मगहर पधार कर तीन वर्ष बाद शरीर छोड़ा। कबीर कसौटी में कहा है–

"पन्द्रह सो पचहत्तर, किय मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादशी रलो पौन में पौन॥"

आप हिन्दू मुसलमान दोनों के पूज्य थे। आपको दोनों जातियाँ चाहतीं थीं। इस लिये अन्त्येष्टि-क्रिया करते समय हिन्दू मुसलमान दोनों लड़ने लगे, हिन्दू कहते थे हम इन्हें जलायेंगे, मुसलमान कहते हम इन्हें गाड़ेंगे। किन्तु जब शव पर से चद्दर उठाई तो वहां कुछ फूल दृष्टि गोचर हुए। उन फूलों को हिन्दू मुसलमानों ने आधा आधा बट लिया। हिन्दुओं ने कबीर चौरा बनाया जो अब तक काशी में विद्यमान है। मुसलमानों ने मगहर में एक एक़ बनवाई जो अब तक ज्यों की त्यों खड़ी हुई। इन दोनों स्थानों को कबीर पंथी पवित्र मानते हैं।

आप की मृत्यु के बाद इनके शिष्यों ने इस धर्म को चलाया और कई शिष्यों ने कबीर पंथ का प्रचार किया। भारत में अब तक कबीर पंथ माना जाता है और उसके मानने वाले भी हजारों की संख्या में हैं।

धन्य कबीर दास को जिन्होंने एक निर्धन मूर्ख जुलाहे के यहां जन्म लेकर अपने जीवन को आदर्श बनाया संसार की अच्छे अच्छे महात्माओं में आप की भी गणना है। आप ने भक्ति पर तो जो कुछ कहा है सो कहा है इसके साथ साथ समाज पर काफी प्रकाश डाला है। ऐसे बहुत ही कम कवि होंगे जिन्होंने समाज की इस भांति पोलें खोल कर उन्हें सुधारने का प्रयत्न किया हो। अब आप की कविता पर एक छोटी दृष्टि डालकर लेख समाप्त करूंगा।

कबीर की कविता

आप की अच्छे कवियों में गणना है। मिश्र बन्धुओं ने आप को हिन्दी नवरत्नों में स्थान दिया है। आप कवि के साथ साथ भक्त कवि हैं। सच्चे और ऊंचे कवि आप के समान ईश्वर भक्त ही निकलें। तुलसी और सूर भी इन्हीं के समान ईश्वर भक्ति की मूर्ति थे। सचमुच में जब मनुष्य किसी भी विषय में तल्लीन हो जाता है, तभी वह कविता कर डालता है इस प्रकार की गई कविता अधिक सरल और स्वभाविक होती है। इस समय मनुष्य सत्य मार्ग पर चलता है।

सचमुच भक्त कवियों में आप का तीसरा स्थान है। प्रथम तो तुलसीदास जी द्वितीय सूरदास उसके बाद आपकी ही गणना है।

"तत्व तत्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी।
बची, खुची कबिरा कही, और कही सब झूठी॥"

जैसा कि हम कह आये हैं, कि कबीर बिलकुल पढ़े लिखे नहीं थे। इन्होंने बैठकर कोई कविता नहीं लिखी। आप के शिष्यों ने आप की कविता को लिख कर पुस्तकाकार कर दिया है। भगवान् दास एक पुस्तक लेकर भाग गये थे, जिससे उनका नाम भागू पड़ गया था।

श्री मिश्र बन्धुओं ने आपके ५ काव्य ग्रन्थों का उल्लेख किया है। जिसमें कबीर वचनावली बीजक आदि उल्लेखनीय हैं श्री० पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय ने कबीर की अच्छी अच्छी कविताओं का संग्रह कबीर वचनावली में किया है। वास्तव में इस संग्रह के लिये उपाध्याय जी बधाई के पात्र हैं।

कबीर लेखक से अधिक अपने ग्रन्थों में ईश्वर

का वर्णन किया है। भला एक भक्त कवि ईश्वर पर कविता न करके क्या चूल्हा, चक्की पर कविता करेगा? यहां पर उनके पूरे छन्दों का उल्लेख तो नहीं हो सकता। हां, कुछ आभास कराया जा सकता है।

"जाको राखे साइंयां, मारि सकै नहिं कोय।
बाल न बांका कर सके, जो जग वैरी होय॥
भूला भूला क्या फिरै, सिर पर बन्ध गई बेल।
तेरा सांई तुझ में, ज्यों तिल माहीं तेल॥

इस प्रकार बहुत से दोहे और छन्द आपने ईश्वर पर कहे हैं। आपने मूर्ति पूजन का घोर विरोध किया, आपने कहा है, कि हमारा ईश्वर हम में है, हम मन्दिर और मसजिद में व्यर्थ जाते हैं। ऊपर की पंक्तियों से भी यही भाव टपकता है।

कितना अच्छा कहा है:

भजे तो को है, भजन को, तजे तो को है आन।
भजन तजन के मध्य में, सो कबीर मन मान॥
वह तत यह तत एक है, एक प्राण दुइ गात।
अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात॥

उपर्युक्त छन्दों में आपने बहुत कुछ कह डाला है। ईश्वर सम्बन्धी जो कहा जा सकता, वह सब आपने इन चार पंक्तियों में भर दिया है। आपके कवि-चातुर्य के यह अत्यन्त निदर्शन है। आपने ईश्वर के सम्बन्ध में और भी कहा है "ईश्वर में सब शक्तियां हैं, वह सब कुछ कर सकता है किन्तु बन्दा (मनुष्य) नहीं कर सकता। इसलिये ईश्वर ही में शक्ति है, ऐसा निष्कर्ष निकलता है। वह सर्व शक्तिमान है, सर्व व्यापक है। मन की शुद्धि के बिना उपासना व्यर्थ है। इस प्रकार ईश्वर सम्बन्धी आपने बहुत सी कविताएं की हैं। ईश्वर भक्ति से तो आप के काव्य ओत प्रोत हैं।

आपने भिन्न भिन्न प्रायः सभी विषयों पर कुछ न कुछ कहा है। जैसे माया-पर-

"माया महा ठगिनी हम जानी।"

कर्म गति पर-

"कर्मगति टारे नहिं टरै।"

आपने राम पर भी बहुत कहा है इसके साथ ही साथ भक्ति और प्रेम पर भी प्रकाश डाला है:-

"विरह बान जिन लागिया, औषध लगत न ताहि।
सुसुकि सुसुकि मरि मरि जियैं, उठे कराहि कराहि॥
यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहि।
सीस उतारे भुईं धरे, तब बैठे घर मांहि॥
पियत प्याला प्रेम का, सुधरे सब साथी।
आठ पहर झूमत रहै, जस मैगल हाथी॥"

इस प्रकार आपने और भी कहा इसके साथ साथ जप, गुरु, पर भी बहुत कुछ कहा है।

आप की कविता में स्वाभाविकता, सरसता तथा कवित्व तो है ही, इसके साथ उपमा अलंकार आदि की भी कमी नहीं है

"पतिव्रता पति को भजै, और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना, तो भी घास न खाय॥
मूरख को समुझावते, ज्ञान गांठ को जाय।
कोयला होय न ऊजरो, नौमन साबुन लाय॥

आपने कर्म काण्ड पर भी बहुत कुछ लिख डाला है इत्यादि इसके साथ साथ उपदेशात्मक दोहे लिखे हैं। जो जहाँ तहाँ पाठ्य पुस्तकों में संकलित कर दिये गये हैं। आपने हिन्दू मुसलमानों के मतों पर अपने विचार भी लिखे हैं।

"दुई जगदीश कहां ते आये, कहु कौने भरमाया।
अल्ला, राम, करीम, केसव, हरि हजरत नाम धराया॥
गहना एक कनक ते गहना, तामें भाव न दूजा।
कहन सुनन दुई कर थापे, एक निवाज एक पूजा॥

मसजित मोर मुल्ला पुकारे, क्या साहब तेरा बहिरा है।
चींटी के पग नेवर बाजै सो भी साहब सुनता है॥"
"ओ इन दोनों राह न पाई।"

इस प्रकार आपने अपने ग्रन्थों में समाज साहित्य, तथा उपदेश पद कविता कर भारतीय साहित्य का बड़ा भाव किया है। सच है, गुदड़ी में भी हीरे छिपे रहते हैं। कहां एक जुलाहा के पुत्र, कहाँ महात्मा होगये। मनुष्य ईमानदारी से कर्तव्य कर आकाश के भी तारे तोड़ सकता है।

आप के ग्रन्थों पर कहां तक कहा जाय। जितना लिखो थोड़ा है हम को यह न भूलना चाहिये, कि एक महात्मा संसार का कितना भला करता है। हमी लोगों में से महात्मा हुए हैं। कबीर महात्मा एवं एक कविश थे।

योग-साधन

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती)

३६८. कानून और कानून का बनाने वाला एक है। कानून कुदरत में विश्वास करना परमात्मा में विश्वास करना है। इस विचित्र संसार में आश्चर्य जनक नियम काम कर रहा है। भली भान्ति विचार करो, गहराई से ध्यान करो। यही परमात्मा है, यही दैवी सत्ता है। यह साक्षी है जिसकी सत्ता में समस्त क्रियाएं होती रहती हैं। उसकी दृष्टि मात्र से माया अपना काम करती रहती है और संसार चक्र को चलाए रहती है। यह मुख्य चक्राधार है। जिस प्रकार लोहे का टुकड़ा चुम्बन शलाका की मौजूदगी में घूमता है उसी प्रकार यह संसार, यह माया, यह मन, कूटस्थ, परमात्मा अर्थात् महान उदार, विभु आत्मा की सत्ता में क्रिया करता है॥

३६९. यह शरीर केवल बुद बुद है जिस तरह समुद्र से बुद बुद उठता है और फिर उसी में लय हो जाता है उसी तरह यह शरीर ब्रह्मरूपी समुद्र से उत्पन्न होकर उसीमें लय हो जाता है।

३७०. यह संसार दो दिन का मेला है। यह शरीर दो मिनट का दृश्य है। तुम अपना अमूल्य जीवन अहंकार और व्यर्थ के स्वार्थी धन्धों में क्यों नष्ट करते हो? इन कर्मों से घृणा लड़ाई, वैमनस्य, असन्तोष और उद्वेग के अतिरिक्त और क्या लाभ होता है? ब्रह्म या सत्य या एक सत्ता को अनुभव करो और शान्ति में प्रवेश करो। सब को शान्ति की प्राप्ति हो। ओ३म् शान्ति

३७१. प्रथम अज्ञान की जटिल ग्रन्थी को ढीला करो, संस्कारों की जड़ों को हिलाओ। ऐसा करने पर ही तुम उनका मूलोच्छेद कर सकते हो। एक दम उनका मूलोच्छेद करना असम्भव है।

३७२. निरन्तर और कठिन साधन करो। तपस्या करो। सत्य पथ का अवलम्बन करो। गुरु की सेवा करो। भक्ति में निमग्न हो जाओ। गुरु, ईश्वर, ब्रह्म, ओ३म् और सत्य एक हैं। गुरु या परमात्मा की दया और अपने पुरुषार्थ से तुम परदे को फाड़ सकते हो, ढक्कन को तोड़ सकते हो, और मोह की शिला को हटा सकते हो। मूल अविद्या के परदे को सरका सकते हो, अज्ञान के परदे को फाड़ सकते हो। और अविद्या के घोरतम परदों में प्रवेश कर सकते हो, पार को पा सकते हो और सनातन, अनन्त ब्रह्म के आनन्द को प्राप्त कर सकते हो। शान्ति और आनन्द के सागर में डुबकी लगा सकते हो। तुम इस असत्य, अज्ञान, नाशवान और दुःखमय संसार को सत्य, ज्ञान,

देवी, अमर और अनन्त जीवन में बदल सकते हो।

२७३. अपने मानसिक भावों को बदल डालो फिर तुमको बन्धन नहीं रहेगा। तुमको घर छोड़ कर जाने की जरूरत नहीं है। तुमको इस ममत्व के छोड़ने की आवश्यकता है कि "यह मेरा पोता है।" अपने पोते में ही आत्मा या राम की झलक देखो जो अन्तर्यामी, सबका आत्मा सब में विराजमान है। 'ईशावास्य मिदं सर्वम्, यह सब परमात्मा से आच्छादित है। ईशावास्य उपनिषद की यह प्रथम पंक्ति है। इसका अभ्यास करो। यदि तुम ज्ञान और विवेक से काम लोगे तो तुमको इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग की प्राप्ति हो जावेगी, तुम्हारे कमरे ही में शान्ति का स्थान मिल जावेगा, उस समय तुम अपने पोते के साथ खेलते हुए आनन्द का अनुभव करोगे।

२७४. जहां कहीं तुम जाओगे तुमको कुछ न कुछ कठिनाइयों का सामना करना होगा। मन की दशा विचित्र है। कठिनाइयाँ भी विचित्र होती हैं। संसार द्वन्द स्थान है। तुमको कठिनाइयों का मुकाबला करना होगा और उन पर विजय प्राप्त करनी होगी। ऐसा करने पर तुम्हारा आत्मिकबल बढ़ेगा। रोना चिल्लाना नहीं चाहिए। साहस पूर्वक कार्य में अग्रसर रहना चाहिए।

२७५. कुण्डलनी का साधन करके बहुत ऊँचे उछलने का प्रयत्न मत करो ऐसा न हो कि इस प्रयत्न में तुम्हारी टांग टूट जावे। क्या तुम उस महतत्व और पूर्ण ज्योति के दर्शन करने की शक्ति रखते हो?

२७६. नौली क्रिया द्वारा अन्तड़ियों को चक्र हिलाने से तुम अध्यात्मिक पुरुष नहीं बन सकते। यह शरीर को स्वस्थ रखने के लिये केवल शारीरिक साधन है। इससे तुम्हारे हाज़में की शक्ति बढ़ जावेगी और शौच साफ आवेगा, जो आदमी कुण्डलनी योग या और ऊंचे साधनों का ज़िकर करते हैं उनसे मुझे भय लगता है। मुझे सत्य बताओ क्या तुम्हारे चित्त से स्वार्थ निकल गया है? क्या तुम्हारे हृदय में विनय का भाव उत्पन्न हो गया है? क्या तुम अपने पड़ोसियों से पवित्र प्रेम करते हो? क्या तुमने ईर्षा को चित्त से निकाल दिया है, दूसरों का दोष निकालना और उनके चुटकी भरना छोड़ दिया है, क्या तुमने दूसरों के गुप्त दोषों को प्रगट करके उनके सम्बन्ध में कुत्सित भाव फैलाने छोड़ दिए हैं। क्या तुम केवल परमात्मा के पुजारी बनने की सद् अभिलाषा चित्त में उत्पन्न कर सके हो? क्या तुम्हारे चित्त में सच्ची आत्म दर्शन की चाह उत्पन्न होगई है? क्या तुम्हारी यह दशा हो गई है कि तुम स्वाँस लेना, जीवित रहना, काम करना और चलना फिरना केवल भगवान के लिए करते हो? तुम नित्य प्रति कितने गायत्री मंत्रों का जप करते हो? क्या तुमने अपनी राजसिक भावनाएं अहंकार उद्दण्डता आदि को कम कर दिया है या बिलकुल त्याग दिया है।

२७७. जब तक तुमने अपने चित्त को निष्काम कर्म द्वारा शुद्ध नहीं किया है तब तक ध्यान में चित्त लगने की अणुमात्र भी आशा रखना व्यर्थ है।

२७८. केवल जीवन मुक्त ही स्वार्थ रहित निष्काम सेवा कर सकता है। जीवन मुक्त न तो किसी की हानि पहुंचाता है और न उसको कोई हानि पहुंचा सकता है। केवल जीवन्मुक्त ही जो सब को अपनी आत्मा समझता है अभय हो सकता है। केवल जीवन्मुक्त ही वास्तविक मौनी है क्योंकि इसके लिए द्वन्द ही नहीं रहा।

२७९. फ़रश या चटाई पर सीधे लेट जाओ। अपनी आंखों को मून्दलो। अपने पट्ठों रगों को

बिलकुल ढीला छोड़ दो। दोनों नाकों के द्वारा धीरे २ स्वाँस को भीतर खैंचो। जितनी देर सुख पूर्वक स्वांस को भीतर रख सको रक्खो। फिर ऐसे विचार करो कि एक बड़ी तीव्र और शक्ति शाली धारा हिरण्य गर्भ से निकल कर तुम्हारे अन्दर बहन कर रही है और तुम्हारे भीतर उसका संचार हो रहा है। तुम यह विचार करो कि उस शक्ति को चूसने के लिए तुमने चुम्बकी लगा रक्खी है, फिर धीरे से स्वाँस को बाहर निकाल दो। इसको दसबार करो, ऐसा करने से तुम्हारे अन्दर शक्ति, बल और जीवन का नवीन संचार होगा। इस क्रिया का प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय करो। इस प्रयोग से शरीर और दिमाग़ दोनों को बहुत लाभदायक खुराक मिलेगी इस क्रिया के करने से तुम्हारा शरीर स्वस्थ रहेगा और चित्त प्रसन्न रहेगा।

३८०. तुमको इस बात की आवश्यकता है कि तुमको दो या तीन वर्ष ऋषिकेश या उत्तर काशी में बिलकुल एकान्त और शान्त स्थान में ध्यान लगाओ। इसके पश्चात् तुम सन्यास ग्रहण कर सकते हो और कुछ काल स्वतंत्रा पूर्वक एकान्त स्थानों में ठहरते हुए विचर सकते हो। कुछ काल पीछे तुम गङ्गा, जमना, नर्मदा, कावेरी आदि नदी के किनारे एक मील दूरी पर कुटी बनाकर रह सकते हो। यहाँ रह कर तुम लोगों को उपदेश कर सकते हो, किसी कला द्वारा सेवा कर सकते हो, कथा सुना सकते हो। जो निवृत्ति मार्ग में चलना चाहते हैं उनके लिए मैंने यह मार्ग सोचा है। गृहस्थी लोगों को निष्काम कर्म, दान, स्वाध्याय, जप और सत्संग करना चाहिए।

जीवन निर्माण

३८१. तुमको चाहिए पहले अपने विचार को ठीक करो। सदाचारी होना सब से मुख्य बात है। सदाचार हीन मनुष्य समाज के लिए मुर्दे की भान्ति है। वह संसार पर भार रूप है। वह समाज के लिए हानि कारक है यदि किसी जिज्ञासु का आचार ठीक नहीं है तो उसको संघ में नहीं रहना चाहिए बल्कि उसको एकान्त स्थान में किसी महान पुरुष की सेवा में रहना चाहिए। इस काल में बहुत से ब्रह्मचारी अपना सदाचार ठीक करने में असफल हो जाते हैं और उनके कारण आश्रम में बड़ी कठिनाई होती है। यह बड़े दुःख की बात है कि मेरा प्रेम और सहानुभूति उनके साथ है। परमात्मा उनको शान्ति संयम और प्रेम प्रदान करे।

३८२. जिस तरह एक सुनार शुद्ध में पर निरन्तर चोट लगाने और उस पर दृष्टि रखने से सोने का जेवर बना लेता है उसी तरह तुमको निरन्तर आत्म दर्शन, घट संशोधन, आत्म निरीक्षण, जप, तप, ध्यान, प्रार्थना, उपवास और सात्विक भोजन से अपने सदाचार को ठीक करना चाहिए। तुमको स्वयं अपनी गलतियों का प्रायश्चित करना होगा। यदि तुम से कभी झूठ बोला जावे, या किसी को गाली निकल जावे या किसी की चुगली हो जावे तो एक दिन का उपवास करना चाहिए और राम नाम की २०० विशेष मालायें फेरनी चाहिए। ऐसा करने पर तुम शीघ्र ही प्रातः काल के सितारे की भान्ति चमकने लगोगे।

३८३. सदाचार में यह बातें शामिल हैं, चुगली करना, किसी के विरुद्ध बातें फैलाना, अपमान करना, दर्प करना, हठ करना, अहंकार, असत्य भाषण, आज्ञा का उल्लंघन, नियम को वृथा मानना,

अपनी बात को सिद्ध करने के लिए ५० झूठ बोलना इत्यादि ।

३८४. तुमको गहरा ध्यान करने का स्वभाव डालना चाहिए। ध्यान करने का स्वभाव परिपक्व करलेना चाहिए। जब भी तुम आंखें बन्द करो तो गहरे ध्यान में चले जाओ। ऐ मेरे प्यारे जिज्ञासुओं तब ही तुम थोड़े काल के लिए समाज में शामिल हो सकते हो। तब ही तुम्हारा स्वभाव ऐसा बन सकता है कि तुम बाह्य प्रलोभनों से बचे रहो। यदि इतना अभ्यास न होगा तो समाज में मिलने से शीघ्र पतन होने की शंका है ॥

३८५. मनोनाश में तृष्णा और वासना के बीज जल कर नष्ट हो जाते हैं। आवागमन का चक्र बन्द हो जाता है। ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। मनोनाश द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

३८६. मनोलय में मन उस काल में कारण प्रकृति में लय हो जाता है। यह फिर संसार रूपी कीचड़ में भ्रमण करने लगता है। मनोलय गाढ़ निद्रा या गहरे ध्यान में होता है परन्तु वासना के बीज नष्ट नहीं होते। मनोलय से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

३८७. मृत्यु के समय एक टूटी हुई सूई और धागा भी तुम्हारे साथ नहीं जावेगा। फिर तुम क्यों मूर्खता से इन कार्यों के धन्धों में व्यर्थ इतना कठिन परिश्रम करते हो? निस्सन्देह उलटा मार्ग है। निस्सन्देह बड़े शोक और दुःख की बात है जीवन साबुन के बुलबुले की भान्ति है। यह बिजली के झंकारे की भान्ति है। यह संसार दो दिन का मेला है। यह दुनिया सराय है। इसमें लोग सायं-काल आते हैं और प्रातःकाल चले जाते हैं। जिस प्रकार लक्कड़ नदी में इकट्ठे होकर रहते हैं और फिर जुदा हो जाते हैं। पिता पुत्र और मित्र सम्बन्धी थोड़े समय के लिए इकट्ठे हो जाते हैं और फिर पृथक् हो जाते हैं। फिर तुम क्यों मोह में फंसते हो? जब कोई मर जाता है तो तुम क्यों मूर्खता से रोते हो? तुम परमात्मा से जुदा होगए हो उसके लिए क्यों नहीं रोते? तुम इसलिए क्यों नहीं रोते कि तुमको अभीतक परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ है। फिर सम्पत्ति के लिए अपने पिता और भाई से क्यों लड़ते हो? इन्द्रियों से और मन से लड़ो। तृष्णा, वासना और बुरे संस्कारों से लड़ो तब ही तुम असली बहादुर कहला सकोगे ॥

३८८. एक मनुष्य प्रातःकाल स्वस्थ और शान्त है परन्तु सायंकाल को दिल की हरकत बन्द हो जाने से या नमूनिया से मर जाता है। यह जीवन की निस्सारता है। फिर तुम इस निस्सार जीवन से क्यों मोह करते हो? अभिनिवेश अर्थात् जीवन से प्यार और मृत्यु भय को नष्ट करो सनातन जीवन को प्राप्त करो। तुमको इसकी प्राप्ति आत्म-साक्षात्कार, ब्रह्म प्राप्ति ध्यान द्वारा होगी ॥

३८९. अय ज्ञान पुत्रो, अमृत पुत्रो, अमरपुत्रो शीघ्र कीचड़ से निकलो और अन्दर की तरफ ध्यान लगाओ ॥

३९०. यदि तुमने अपना जीवन मनुष्य मात्र की सेवा में अर्पण कर दिया है, यदि तुम पवित्र निष्काम कर्म योग में लगे हुए हो तो नित्य सिद्ध भी तुम्हारे द्वारा काम करेंगे। वह संसार में भ्रमण करते रहते हैं और ऐसे आदमी की तलाश में रहते हैं जो शुद्ध अन्तःकरण से परोपकार करने वाला हो। पात्र के मिलने पर वह अवश्य सहायता करते हैं।

३९१ अन्तरात्मा का ध्यान करो और प्रश्न

करो कि मैं कौन हूं? ओ३म् का जप करो और विचार करो कि मैं साक्षी हूं। इन तीन साधनों द्वारा तुम आत्म साक्षात्कार या ब्रह्म की प्राप्ति कर सकोगे तुम जप और ध्यान के लिए इनमें से एक को पसन्द कर सकते हो।

३६२. एक कीट मल मूत्र में क्रीडा करके प्रसन्न होता है, इसी प्रकार विवेक और वैराग्य से शून्य मनुष्य चाहे उसके नाम के साथ कितनी ही उपाधी लगी हों और चाहे वह विश्व विद्यालय की कितनी ही डिग्रियां प्राप्त किए हुए हो संसारी कीट ही है यदि वह इस जीवन में सन्तुष्ट है कि खालिया और मल मूत्र का त्याग कर दिया॥

३६३. जब तुम अपनी आंखें बन्द कर लेते हो और गहरा ध्यान में चल जाते हो तो तुमको आत्म प्रेरणा होती है। ऐसे ध्यान से तुमको सहज बोध, अनुभव और अनन्त आनन्द की प्राप्ति होगी। इस दशा में तुम्हारा सान्निध्य दैवी स्रोत, अन्तरात्मा और पूर्ण ज्ञान से हो जावेगा। तुम्हारे अन्तर ही में ज्ञान की पुस्तकों के पृष्ठ आप से आप प्रगट होने लगेंगे। तुमको प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति होने लगेगी।

३६४. जब साधक एक बार भी परमात्मा के दैवी वस्त्र के अंचल को छू लेगा तो उसका हृदय दैवी आनन्द, दैवी तेज, दिव्य ज्ञान और दैवी प्रेम से भर जावेगा। यमराज कठिनता से उसके पास पहुंच सकता है। वह अमर हो जावेगा वह परमात्मा की सान्निध्यता में रहेगा। माया उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। ऐसी आत्माओं की महिमा अपार है॥

३६५. यदि किसी साधक के बड़ा फोड़ा निकल आता है या उसको तीव्र ज्वर हो जाता है तो यह केवल उसके कर्मों की शुद्धि है। उसका अशुभ कर्म समाप्त हो जाता है। वह हृदय से परमात्मा को धन्यवाद देता है। उसको कुछ शोक नहीं होता। चूंकि वह आध्यात्मिक मार्ग में शीघ्रता से उन्नति कर रहा है इसलिए उसको बहुत से कष्ट और बीमारियां होंगी जिनके द्वारा उसके बुरे कर्मों की शुद्धि होती है। उसको सदैव साहसी और प्रसन्न चित्त रहना चाहिए। परमात्मा उसको बहुत सहन शक्ति प्रदान करेंगे। यह परमात्मा की विभूति की दान है। उसके काम रहस्य पूर्ण हैं, मेरे प्यारे रामानन्द व प्रकाश जानो और उसके भेद को समझो॥

३६६. सत्य में निवास करो, सत्य का अनुभव करो, सत्य को पहचानो, सत्य को याद रक्खो और निकट व दूर सत्य का प्रचार करो॥

३६७. अपनी शक्ति का ठीक उपयोग करो, मौन व्रत द्वारा उसको सुरक्षित रक्खो। ठीक विचार करो, प्राणायाम करो, ध्यान करो और व्यर्थ का डर, फिकर, और हवाई किले बनाना छोड़ दो॥

३६८. अब साधको भिक्षा मांगने के भाव से मत मांगो। जिस वस्तु की तुमको आवश्यकता है उसको अधिकार से मांगो। समस्त संसार ही तुम्हारा घर है और यदि तुमने अपनी इन्द्रियों पर काबू पा लिया है तो समस्त प्रकृति और अष्ट सिद्धि व नव ऋद्धि तुम्हारी सेवा के लिए हाज़िर खड़ी रहेंगी॥

३६९. वीर बनो, जनाना वेदान्ती मत बनो। केवल मूँछ कटवाकर स्त्री रूप (Lady) सन्यासी मत बनो। तुम्हारे प्रत्येक छिद्र में, कण २ में, अणु २ और परमाणु २ में और नस नाड़ी में शक्ति का संचार होना चाहिए और तुम्हारी वाणी में बिजली की सी शक्ति होनी चाहिए॥

भजन

मन मोहन रिझवार री तेरे नैन सलौने ॥ टेक ॥
तू अलबेली भान गाम की, अब ही आई है गाने ॥
सिखवन देहौं सिखावन लेहौं, पग तिन धरत अगाने
अबकी होरी तेरे नगर में, कैते कौतुक होने ॥
"दया" सखी या ब्रज में बसके, नेह निभायो कोने ॥

२

सुन सुनियो रे बलिराजा,
बसुधा काहु की नांय भई ॥ टेक ॥
सतयुग में हिरनाकुश राजा,
चारों खूँट मही।
अतिव प्रचंड महीपति राजा,
वाहूके संग न गई ॥ १ ॥
त्रेता में रावण हूयो राजा,
कंचन कोट मही।
इक लख पूत सवालख नाती,
लकड़ी काहू न दई ॥ २ ॥
द्वापर में दुर्योधन राजा,
नौलख भीड़ खड़ी।
सोरा योजन वाके छत्र दुरत रहे,
मिट्टी मिलन लई ॥ ३ ॥
सतयुग द्वापर त्रेता कलियुग,
चारों युग सही।
कहत "सूर" तोही नर झूंठे,
जिन यह अपना कही ॥ ४ ॥

३

डगर में प्यारी आज मिले कहीं श्याम ॥ टेक ॥
लट पट पाग सोहे पचरंगी,
पीताम्बर अभिराम ॥ १ ॥
नख शिख अमित आभरण मनोहर।
बंशी धर गुण धाम ॥ २ ॥
देख जाय वह नखकी शोभा।
कोटि लजावत काम ॥ ३ ॥
लक्ष्मी नारायण दर्शन बिन,
तड़फूं आठों याम ॥ ४ ॥

४

देखो आली ठाडे, कदम की छैयां ॥ टेक ॥
नन्द नन्दन वृषभान नन्दनी, दोऊ के रहे गल बैयां ॥
भूल गई उन गागर उठाइबो, बिसर गई इन गैयां ॥
ललित किशोरी प्रीति बाढ़ी अति दोऊ ललन बलैयां

५

बाँके सांवरिया ने घेरी मोहे आनके ॥ टेक ॥
हौं जो गई जमुना जल भरने,
मारग रोक्यो मोरी आनके ॥ १ ॥
वृन्द वन की कुंज गलिन में,
बंशी बजावे आन तान के ॥ २ ॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
प्रीति पुरातन जानके ॥ ३ ॥

६

मेरे मन बस गयो सीताराम ॥ टेक ॥
जटा मुकुट मुनि भेष धरायो है।
कठिन धनुष लिये सारंग पान ॥ १ ॥
गौर वर्ण सिया जनक नन्दिनी।
रघुवर हैं सुन्दर घनश्याम ॥ २ ॥
सरयू के तीर अयोध्या नगरी।
विघ्नहरन हैं लक्ष्मण अरु राम ॥ ३ ॥
आशानन्द कहे कर जोरी।
चौंसठ घड़ी आठों याम ॥ ४ ॥